गुरुकुल-पत्रिका

पूर्णाङ्क ९६ ★
जुलाई १९५६

व्यवस्थापक : श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति
सम्पादक समिति : श्री सुखदेव दर्शनवाचस्पति
श्री शङ्करदेव विद्यालङ्कार
श्री रामेश बेदी (मन्त्री)

इस अङ्क में

अगले अङ्क में

अन्य अनेक विश्रुत लेखकों की सांस्कृतिक, साहित्यिक व स्वास्थ्य सम्बन्धी रचनाएं।

मूल्य देश में ४) वार्षिक
विदेश में ६) वार्षिक

एक प्रति
छः आने

ॐ

गुरुकुल-पत्रिका

गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय की मासिक पत्रिका]

विदेशों में बौद्ध धर्म का विस्तार

श्री भदन्त आनन्द कोसल्यायन

जिस समय अशोक-पुत्र महेन्द्र धर्म प्रचारार्थ लंका पहुँचे, उस समय सिंहल में राजा देवानांप्रियतिस्स का शासन था। राजा ने महेन्द्र स्थविर तथा उन के साथियों की ओर संकेत करते हुए महामति महेन्द्र से पूछा—

क्या भारत में इस प्रकार और भी भिक्षु हैं?

उत्तर मिला—जम्बुद्वीप काषाय वस्त्र से प्रज्ज्वलित है।

आज से बाईस सौ वर्ष के बाद जम्बुद्वीप में तो उस काषाय वस्त्र का एक प्रकार से पता ही नहीं, किन्तु भारत से बाहर भारत के दक्षिण, पूर्व, उत्तर और कुछ मात्रा में पश्चिम में भी बौद्ध धर्म का वह प्रतीक भिक्षु वेष लहलहा रहा है।

विदेशों में भारत से बौद्ध धर्म कैसे प्रचारित और प्रसारित हुआ इस का मूल तो हमें भगवान् बुद्ध की उस अनुशासना में ही मिलता है, जिस की घोषणा उन्होंने अपने धर्म प्रचार कार्य के आरम्भ में ही की। उन्होंने कहा था—

चरथ भिक्खवे चारिकं बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय अत्थाय हिताय देव मनुस्सानं, देसेथ भिक्खवे धम्मं आदिकल्याणं, मज्झकल्याणं, परियोसाण कल्याणं।

भिक्षुओं, बहुत जनों के हित के लिए, बहुत जनों के सुख के लिए घूमो। भिक्षुओं, देवताओं और मनुष्यों के हित के लिए विचरो। भिक्षुओं, आदि, मध्य और अन्त में कल्याणकारक धर्म का उपदेश करो।

भिक्षु पूर्ण का उदाहरण

भगवान बुद्ध के शिष्यों ने अपने शास्ता के इस अनुशासन को किस प्रकार ग्रहण किया, उस का एक उदाहरण सूनापरान्त का भिक्षु पूर्ण है। उस से तथागत ने पूछा—

पूर्ण! तू कौन से प्रान्त में विचरण करेगा?

भन्ते! सूनापरान्त नामक जनपद है, मैं वहां विचरण करूंगा।

पूर्ण! सूनापरान्त के मनुष्य चण्ड और कठोर होते हैं। यदि वे चण्ड कठोर वचनों का प्रयोग करेंगे तो तेरे मन में क्या होगा?

मैं समझूंगा कि सूनापरान्त के मनुष्य भले हैं, बहुत भले हैं, क्योंकि वे मुझ पर हाथ नहीं छोड़ते...

पूर्ण! यदि सूनापरान्त के लोग तुझ पर हाथ छोड़ बैठें तो तेरे मन में क्या होगा?

मैं समझूंगा कि सूनापरान्त के मनुष्य भले हैं, बहुत भले हैं, क्योंकि वे मुझे डंडे से नहीं मारते।

यदि डंडे से मारें तो तेरे मन में क्या होगा?

मैं समझूंगा कि सूनापरान्त के मनुष्य भले

हैं, बहुत भले हैं, क्योंकि वे मुझे शस्त्र से नहीं मारते।

यदि शस्त्र से मारें तो···

तो भी समझूंगा कि सूनापरान्त के लोग भले हैं, बहुत भले हैं, क्योंकि वे शस्त्र चला कर मेरा प्राण नहीं लेते।

यदि सूनापरान्त के लोग तुझे शस्त्र से मार डालें···

तो भी भन्ते, मैं समझूंगा कि सूनापरान्त के लोग भले हैं, बहुत भले हैं, क्योंकि भगवान् के कोई-कोई शिष्य जीवन से तंग आ कर, ऊब कर, घृणा कर, आत्म हत्या के लिये शस्त्र खोजा करते हैं वह शस्त्र मुझे अनायास ही मिल गया।

साधु, साधु, पूर्ण, तू इस प्रकार के शम दम से युक्त हो कर सूनापरान्त जनपद में वास कर सकता है।

महास्थविर मोग्गलिपुत्त की प्रेरणा

विदेशों में संगठित धर्म प्रचार आरम्भ करने का श्रेय यदि किसी एक व्यक्ति को दिया जा सकता है तो वह है अशोक गुरु मोगलिपुत्ततिस्स जिन की पवित्र अस्थियां अभी-अभी लन्दन से भारत लाई गई थीं। अशोक गुरु मोगलिपुत-तिस्स की ही प्रेरणा से पटना में तीसरी संगीती हुई थी। उसी के प्रकरण के विवरण में लिखा है—

मोग्गलिपुत स्थविर ने तृतीय संगीति करते हुए सोचा कि बाहर के देशों में धर्म को कैसे स्थापित किया जाय? तब उन्होंने इस का भार अनेक भिक्षुओं के कंधों पर डाला। उन्होंने मध्यांति (मंझन्तिक) स्थविर को कश्मीर और गन्धार भेजा। महादेव स्थविर को महिंसक अर्थात् वर्तमान मैसूर के उत्तरीय भाग में भेजा। यवन धम्मरक्षित को अपरांत देश अर्थात् समुद्र तट पर बम्बई से सूरत तक के प्रदेश में भेजा। महाधर्म रक्षित स्थविर को महाराष्ट्र में (और) महारक्षित स्थविर को यवन लोगों में भेजा। हिमवन्त (हिमालय) प्रदेश में मंझिम स्थविर को भेजा (और) स्वर्णभूमि दक्षिण बर्मा में सोण और उत्तर दो स्थविर भेजे। अपने शिष्य महा महेन्द्र स्थविर तथा इट्टीय, उत्तीय, संबल और भद्रशाल इन पांच स्थविरों को यह कह कर लंका भेजा कि तुम मनोज्ञ लंकाद्वीप में मनोज्ञ बुद्ध धर्म की स्थापना करो।

बर्मा और लंका में

निस्सन्देह न केवल लंका के ही बल्कि बर्मा के भी लोगों का धार्मिक विश्वास है कि भगवान बुद्ध के धर्म का प्रवेश उन के देश में बुद्ध के जीवन काल में ही हो गया था। किन्तु यह बात एतिहासिक प्रतीत नहीं होती। यह पक्ष प्रबल मालूम देता है कि अशोक के समय में ही सर्व-प्रथम अशोक गुरु मोग्गलिपुत्त तिस्स के साधु प्रयत्न के फलस्वरूप बौद्ध धर्म ने सिंहल और बर्मा में प्रवेश पाया।

अशोक के समय में ही अशोक पुत्री भिक्षुणी संघमित्रा, बुद्ध गया स्थित बोधिवृक्ष की एक शाखा लेकर लंका पहुँची जो वहां की तत्कालीन राजधानी अनुरोधपुर में रोप दी गई। पिछले २२०० वर्ष में बोधिवृक्ष की यह शाखा बढ़ कर लंका की जयश्री महाबोधि हो गई है। कदाचित अनुरोधपुर की यह जयश्री महाबोधि ही संसार का सब से पुराना ऐतिहासिक वृक्ष है।

बुद्ध धर्म की चिरस्थिति की दृष्टि से लंका के बौद्ध इतिहास में जो सब से महत्वपूर्ण घटना घटी जिस का प्रभाव सारे भावी इतिहास पर पड़ा, वह थी पालि त्रिपिटक और उस की अट्ठ-कथाओं अर्थात् अर्थ कथाओं का लिपिबद्ध

किया जाना।

बर्मा और सिंहल दोनों ही प्रधान रूप से स्थविरवादी देश रहे हैं। किन्तु दोनों देशों को ही ऐसे समय देखने पड़े हैं जब धर्म प्रदीप आज बुझा कि कल बुझा हो गया है। जब-जब ऐसा समय आया तो कभी बर्मा ने सिंहल की सहायता से और कभी सिंहल ने बर्मा की सहायता से अपने-अपने यहां धर्म प्रदीप को अधिक प्रज्वलित कर लिया है।

त्रिपिटक का बर्मा में प्रथम संस्करण

पिछली शताब्दी में बर्मा में मिन्-दोन-मिन नाम का एक राजा हुआ है। जिस प्रकार लंका के वट्टगामणी ने अपने शासन काल में सारे त्रिपिटक को लिपि-बद्ध करवाया, उसी प्रकार राजा मिन् दोन मिन ने तीन वर्षों तक विद्वान भिक्षुओं के संघ को एकत्रित कर अपने सभापतित्व में त्रिपिटक के एक-एक ग्रन्थ को पढ़ते हुए उस के शुद्धाचरण का निश्चय कराया। सारे त्रिपिटक के इस संस्करण को उस ने संगमरमर की ७२९ पट्टियों पर लिखवाया, जो आज भी मांडले के पास कुथो-दाव् विहार के हाते में स्थापित हैं।

ठीक उसी प्रकार का कार्य अब सौ वर्ष बाद बर्मा में फिर यू नू की सरकार की संरक्षता में हो रहा है। उस की विशेषता है कि इस में सिंहल, स्याम, बर्मा, हिन्दचीन, आदि सभी स्थविरवादी देशों का सहयोग प्राप्त है।

बर्मा के और पूर्व जो आजकल का थाइलैंड है उस का नाम स्याम है। क्योंकि देश का यह नाम परिवर्तन अभी हुआ है, इसलिए अभी भी कुछ लोग उसे स्याम भी कहते ही हैं। स्याम या श्याम शान शब्द का रूपान्तर है। शान जाति के लोग अब भी बर्मा के पूर्वोत्तरी भाग में रहते हैं। इस शान शब्द से ही हमाहाम, अहोम, असाम बनते-बनते हमारे देश का एक राज्य बना है।

स्याम राज्य वा थाई राज्य का प्राचीन इतिहास बहुत कुछ अज्ञात है। तेरहवीं शताब्दी में ही हम सुखोडिया में सर्वप्रथम एक थाई राजवंश को स्थापित होते देखते हैं।

बर्मा की तरह ही स्याम का बौद्ध धर्म का इतिहास भी सिहल से धर्म परम्परा के लेन देन का इतिहास रहा है। सिंहल के तीन निकायों में जो सर्वाधिक प्रभावशाली स्यामी निकाय है, उस का मूल श्रोत स्याम में ही है।

स्याम के विहार और भिक्षु

इस समय स्याम के बीस हजार विहारों में कोई एक लाख पैंसठ हजार भिक्षु रहते होंगे। इन भिक्षुओं के अतिरिक्त लगभग अड़सठ हजार श्रमण होंगे जिन्हें आप अपने यहां के गुरुकुलों के ब्रह्मचारी मान सकते हैं।

सभी स्थविर-वादी देशों में स्याम के ये विहार और भिक्षु अद्भुत रूप से संगठित हैं। ठीक-ठीक कहना हो तो ऐसा लगता है कि जैसे उन की अपनी एक समानान्तर सरकार ही चलती है।

स्याम का राजा अनिवार्यतः बौद्ध होता है और वहां की सरकार बौद्ध ही है। इसलिए स्याम देश के बौद्ध भिक्षुओं को जितना राज्याश्रय प्राप्त है, इतना शायद किसी भी अन्य देश के भिक्षुओं को नहीं।

स्याम से और अधिक पूर्व की ओर बढ़ने से पहले हम अपने पड़ौसी देश तिब्बत की चर्चा कर लें। यह सचमुच आश्चर्य की बात है कि ईसा की प्रथम शताब्दि में ही बौद्ध धर्म हिन्द-चीन और जावा तक जा पहुंचा था, जबकि

५६ ई० में ही खोतन के काश्यप मातंग ने चीन जाकर बौद्ध ग्रन्थों का अनुवाद किया, जबकि ३७२ ई० में बौद्ध धर्म कोरिया और ५३८ ई० में जापान तक जा पहुंचा, तब भी अपने पड़ौसी तिब्बत में बौद्ध धर्म का प्रवेश सातवीं शताब्दी तक नहीं हुआ। इस देरी के दो ही कारण हो सकते हैं। एक तो हिमालय की दुर्लंघ्य दीवार का व्यवधान, दूसरे लोगों का सामाजिक तौर पर बहुत पिछड़ा हुआ होना।

लेकिन इसी का शायद यह परिणाम है कि एक बार जब भोट में बौद्ध धर्म का प्रवेश हो गया, और वहां उस का प्रचार और प्रसार होने लगा और तो तिब्बत एक प्रकार से बौद्ध धर्म का गढ़ बन गया। आप को यदि नालन्दा, विक्रमशिला तथा ओदन्तपुरी जैसे प्राचीन विश्व-विद्यालयों के नमूने देखने हों तो आज भी आप तिब्बत के समये आदि विहारों को देख सकते हैं।

न जाने हमारा कितना वाङ्मय अपने अनुवादों के रूप में ही सुरक्षित है। इतना ही नहीं तिब्बत के शीत जलवायु ने दीपकर श्रीज्ञान जैसे महान् भारतीय पण्डितों के साथ गये हुए अनेक ग्रन्थों को भी ज्यों का त्यों सुरक्षित रखा है।

तिब्बती लामाओं को हम कभी-कभी एक चर्खी सी घुमाते देखते हैं। उन चर्खियों में कागज पर अनेकों बार लिखा हुआ ॐ मणि पद्मे हुँ जाप रहता है, जिस के एक बार घूमने से ही न जाने कितना जाप हो जाता है।

तिब्बत आज दिन चीन का एक अङ्ग है। चीन में भी बौद्ध धर्म ने अपनी जड़ें कम नहीं जमाई। लेकिन चीन देश का बौद्ध जीवन, विशेष रूप से भिक्षु जीवन, अपनी विशेषता रखता है।

चीनी भिक्षुओं की विशेषता

जिस प्रकार चीनी विहार प्रायः नगर से बाहर बने रहते हैं, उसी प्रकार चीनी भिक्षुओं का जीवन भी जनता के जीवन से कुछ अलग सा रहता है। वे ध्यानमार्ग के विशेष अभ्यासी कहे जा सकते हैं।

चीनी त्रिपिटक संस्कृत त्रिपिटक का ही अनुवाद है। अपने भाष्यों तथा भिन्न-भिन्न आचार्यों द्वारा रचित स्वतन्त्र ग्रन्थों को लेकर वह एक विशाल वाङ्मय बन गया है। कोरिया में बौद्ध धर्म चीन से गया और उस का सब कुछ एक प्रकार से चीनी ही है। वहां किसी भी बौद्ध विहार में जाओ, सब कुछ चीनी में ही लिखा मिलेगा।

जापान न चीन की तरह बड़ा देश है और न कोरिया की तरह छोटा। यहाँ भी न बौद्ध विहारों की कमी है और न सम्प्रदायों की। इधर जापान में बौद्ध धर्म नयी परिस्थितियों का नये ढंग से मुकाबला करने का प्रयास कर रहा है।

पूर्वी देशों की ही तरह एशिया के बाहर के कुछ पाश्चात्य देशों में भी बौद्ध धर्म का प्रचार हुआ है। लिटवानिया सदृश कुछ छोटे छोटे राज्यों में आज भी पुरानी बौद्ध परम्परा सुरक्षित है।

वह न भी हो तो भी नये संसार में नये सिरे से बौद्ध धर्म जो अपना स्थान बनाता जा रहा, वह भी बहुत महत्वपूर्ण है।

बलिदान

श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति

पुलिस के अफसरों ने कमरे में पहुंच कर काफी चुस्ती से काम किया। पिता जी की मृत्यु का प्रामाणिक समाचार तो उन्हें वहां पहुंचते ही डा० अन्सारी से मिल गया था. एक सब इन्सपैक्टर धर्मसिंह की ओर मुका और दूसरा धर्मपाल जी की ओर. उस ने क्षणेक ध्यान से देख कर स्थिति को समझ लिया और धर्मपाल जी से कहा कि जब तक मैं न कहूँ, तब तक शिकंजे को ढीला न कीजियेगा। तब उसने अपना रिवाल्वर हत्यारे के माथे पर रख कर कहा—'खबरदार, अगर हिला तो गोली छोड़ दूंगा' फिर फुलबूट वाला अपना दायां पांव उस की कलाई पर बड़े जोर से मार कर दबा दिया, जब देख लिया कि कलाई बिलकुल ढीली हो गई, तो बायें हाथ से उस का पिस्तौल पकड़ कर धर्मपाल जी से हाथ छोड़ देने को कहा, हाथ छोड़ देने पर हत्यारे का पिस्तौल सब इन्सपैक्टर के हाथ में आ गया। तब सब इन्सपैक्टर ने धर्मपाल जी को हत्यारे को छोड़ कर उठ जाने के लिये कहा।

वहां जितने व्यक्ति थे, सब उस दिन-दहाड़े हत्या करने वाले व्यक्ति को देखने के लिये अत्यन्त उत्सुक थे, दर्शकों ने अपनी भावना के अनुसार उस का कल्पनाचित्र मन में बना रखा था। पीछे से इस विषय में प्रायः सर्व सम्मति पाई गई कि जब हत्यारा उठ कर खड़ा हुआ, तब उस की सूरत शक्ल ने दर्शक लोगों के काल्पनिक चित्रों को सर्वथा झूठा सिद्ध कर दिया। वह किसी हट्टे-कट्टे भयानक रूप वाले खूनी को देखने की आशा रखते थे, परन्तु जब देखा तो एक ऐसा अधेड़ सामने खड़ा पाया, जिस का शरीर मध्यम था, दाढ़ी-मूछ के बाल पक रहे थे, देखने में अदालत का मुहर्रर मालूम पड़ता था। पीछे से मालूम हुआ कि उस का नाम अब्दुलरशीद था और वह किताबत का काम करता था।

अब्दुल रशीद ने उठकर चारों ओर देखा तो उस की नजर डा० अन्सारी पर पड़ी, कह नहीं सकते कि उस की वह अदा स्वाभाविक थी या कृत्रिम। वह डाक्टर जी को देख कर मुस्कराया और काफी ऊंचे स्वर से कहा, डाक्टर साहिब, आदाबअर्ज, उस आदाबअर्ज में किसी पहली मुलाकात की झलक आती थी। बाद में तहकीकात करने पर मालूम हुआ कि अब्दुल रशीद ने अपने खूनी संकल्प की सूचना बहुत से प्रतिष्ठित मुसलमानों को दे रखी थी। उन में से कुछ ने उन्हें रोका, और कुछ ने प्रोत्साहित किया। डाक्टर साहब उन में से थे, जिन्होंने उसे रोका था। वह कई महीनों से विधि-पूर्वक नृशंसता की तैयारी कर रहा था। इस कार्य के समर्थन में उसने उल्माओं का फतवा तक ले लिया था।

इतनी हल्की सी मुस्कराहट के पश्चात् अब्दुल रशीद के चेहरे पर एक गम्भीर मुर्दनी छा गई। वह उस के चेहरे का स्थायी भाव था, जो तब तक कायम रहा, जब तक वह जेल में फांसी की रस्सी से झूल कर कर्मफल पाने के लिये बड़े दरबार में नहीं चला गया।

उस दिन बलिदान भवन में जो अमर कहानी रुधिराक्षरों से लिखी गई, उसे यहां दुहराने की आवश्यकता नहीं है। वह बलिदान के विस्तृत इतिहास का एक परिच्छेद है। और

यह मेरी निजू स्मृतियों का संकलन है। गोली-काण्ड के पश्चात बलिदान भवन में मैंने जो कुछ देखा मैं वह सुना रहा हूँ।

डा० अन्सारी अपने लिये अन्य कोई कार्य न देख कर और उस स्थान के वातावरण को अत्यधिक गर्म होता अनुभव कर के चले गये। पुलिस की एक टुकड़ी अब्दुल रशीद को हथकड़ी बेड़ी डाल, और लारी में बिठा कर कोतवाली ले गई, और दूसरी टुकड़ी बलिदान भवन के पहरे पर तैनात कर दी गई। इस समय वहां पुलिस के कई ऊंचे अफसर पहुंच चुके थे, और बयान लिये जाने लगे थे।

यह स्वाभाविक ही था कि ऐसी भयंकर साम्प्रदायिक दुर्घटना से उस स्थान पर और धीरे-धीरे सारे शहर में साम्प्रदायिक विद्वेष की अग्नि प्रचण्ड हो उठती। वह घटना साधारण नहीं थी। ३० करोड़ व्यक्तियों के एक सर्व-सम्मानित धर्माचार्य की, दूसरे मत के अनुयायी द्वारा केवल धार्मिक मतभेद के कारण हत्या इतिहास में प्रतिदिन नहीं होती वह कभी-कभी होती है, और जब कभी होती है, तब इतिहास में नये युग का आरम्भ हो जाता है। इस दुर्घटना ने भी भारत के इतिहास में एक नया युग आरम्भ कर दिया था। हत्या के पश्चात् थोड़े ही क्षणों में बलिदान भवन से फैल कर एक आधे घन्टे के अन्दर-अन्दर दिल्ली शहर में, और शायद दो या तीन घन्टों में सारे देश में उस आये हुए युग की सरसराहट सुनाई देने लगी थी। संसार में कभी कोई वस्तु सर्वथा निर्गुण या निर्दोष नहीं होती। जो नया युग एक मज-हबी पागल की घिनौनी चेष्टा के कारण पैदा हो वह निर्दोष होता भी कैसे ? उस नये युग के भी दो पहलू थे—एक बुरा और एक अच्छा। बुरा पहलू यह था कि हिन्दू जाति के एक बड़े भाग में एक अद्भुत जागृति ने जन्म लिया। पहला फल अब्दुल रशीद की दुष्टता का था अच्छी क्रिया की अच्छी, और बुरी क्रिया की बुरी प्रतिक्रिया स्वाभाविक थी। इस लिये केवल विवेचनात्मक दृष्टि से देखें तो उस सन्ध्या समय की दुर्घटना से हिन्दू जाति पर जो अच्छे और बुरे प्रभाव पड़े, वह सर्वथा स्वाभाविक थे। उन पर प्रसन्न होना, या दुखी होना अपनी तबियत का परिणाम हो सकता है, परन्तु उन की स्वाभाविकता में शायद ही कोई मत-भेद हो।

संस्मरण के इस अध्याय को समाप्त करने से पूर्व मैं दो तीन आपबीती चीजें पाठकों को और सुना देना चाहता हूँ। जिस समय इधर अब्दुल रशीद अपनी मूर्खता भरी चेष्टा से इस्लाम के माथे पर कलंक का टीका लगा रहा था, उधर गोहाटी में अखिल भारतीय राष्ट्रिय महासभा के अधिवेशन की तैयारियां हो रही थीं। स्वागताध्यक्ष महोदय ने पिता जी को एक निजू पत्र लिख कर विशेष आग्रह से महासभा के अधिवेशन में निमन्त्रित किया था। उस पत्र का उत्तर पिता जी की आज्ञा से मैंने ही दिया था। उस में अस्वस्थता के कारण न जा सकने पर दुख प्रगट करते हुए अधिवेशन की सफलता के लिये ईश्वर से प्रार्थना की गई थी। पत्र पहुंचने पर स्वागताध्यक्ष ने एक तार द्वारा सन्देश की प्रार्थना की। वह सन्देश का तार भी पिता जी के आदेश के अनुसार मैंने ही लिखा था। मैं केवल स्मृति से उस तार को उद्धृत कर रहा हूँ। इसमें किसी शब्द का भेद हो सकता है, अभिप्राय का नहीं, तार यह था—

On Hindu Muslim unity depends future wellbeing of India.

भारत का भावी सुख हिन्दूमुस्लिम एकता

आश्रित है।

यह सन्देश निमोनिया की उग्र दशा में प्रभात की शान्त वेला में, बीमार की चारपाई पर से लिखवाया गया था। इस कारण मान लेना चाहिये कि यह सन्देश देने वाले की अन्तरात्मा का सन्देश था। स्नातक होने के पश्चात् लगभग १६ वर्ष तक पिताजी के निरन्तर समीप रहने पर मुझे जो अनुभव हुआ उसके आधार पर मैं कह सकता हूँ कि उपर्युक्त सन्देश पिताजी की अन्तरात्मा का संदेश था। वे हिन्दू-मुस्लिम एकता के कट्टर पक्षपाती थे, परन्तु साथ ही उन का यह भी विश्वास था कि वहां एकता तब तक जन्म नहीं ले सकती, जब तक हिन्दू जाति के निर्बल हिन्दू सबल मुसलमानों के मित्र नहीं बन सकेंगे। इस कारण वह हिन्दुओं को मुसलमानों के समान मित्र बनाने के पक्षपाती थे। उनके हिन्दू संगठन का अभिप्राय मुस्लिम विरोधी नहीं था—अपितु जाति के आंतरिक दोषों को दूर करना था।

मनुष्य के लिये सबसे कठिन काम अपनी भावनाओं का ठीक विश्लेषण करना है। एक प्रसिद्ध लेखक ने लिखा है कि प्रत्येक व्यक्ति के लिये दूसरे व्यक्ति का मन एक बन्द कमरा है जिस के अन्दर की असली दशा का वह केवल अनुमान लगा सकता है। अनुभव बतलाता है कि मनुष्य कभी-कभी अपने अन्दर की असली दशा का अनुमान भी नहीं लगा सकता, वह उसके लिये केवल बन्द कमरा ही नहीं, अभेद्य दुर्ग बन जाता है, जिसके अन्दर का अनुमान लगाना भी उसके लिये असम्भव हो जाता है। आत्म विश्लेषण अन्य रासायनिक तथा मनोवैज्ञानिक विश्लेषणों की अपेक्षा कठिन कार्य है।

यही कारण है कि मुझ से जब एक मित्र ने पूछा, जब स्वामी जी का बलिदान हुआ तब आप को कैसा अनुभव हुआ? मैं बहुत देर तक चुप रह कर सोचता रहा कि क्या उत्तर दूं, पाठक मेरा यह इकबाली बयान पढ़ कर आश्चर्यित होंगे, वह सोचेंगे कि इस प्रश्न का उत्तर तो निश्चित ही है, और वह यह कि 'मुझे अपार दुःख हुआ'। यह तो मैं कैसे कहूँ कि मुझे अपार दुःख नहीं हुआ, परन्तु जब आत्मविश्लेषण करके देखा तो केवल इतना उत्तर देने की हिम्मत नहीं पड़ी—क्योंकि उत्तर अधूरा होता, अपने अन्दर आंखें डाल कर भी ठीक-ठीक नहीं देख सका, कि उस असाधारण घटना ने मेरे हृदय और मस्तिष्क पर क्या-क्या और किस क्रम से प्रतिक्रियायें पैदा कीं।

समाचार सुनने का पहला असर मुझ पर यह हुआ कि ठीक परिस्थिति जानने की इच्छा पैदा हुई। यों दुर्घटना का समाचार मुझे बिल्कुल आकस्मिक या अनहोना प्रतीत नहीं हुआ। मानों किसी इस प्रकार के समाचार की तो प्रतीक्षा ही थी। इसके दो कारण थे. पहला कारण यह था कि लगभग दो वर्ष से पिताजी को मुसलमान समाचार पत्रों में छपी हुई, और डाक द्वारा बगैर नाम के खुली हुई धमकियां दी जा रही थीं। शुद्धिसभा का प्रधान पद स्वीकार कर लेने के कारण धर्मान्ध मुसलमानों में पिताजी के प्रति क्रोध की भावना उत्पन्न की जा रही थी, जिसका प्रकाशन धमकियों के रूप में होता रहता था। इस असन्तोषाग्नि पर उन दिनों चलाये गये प्रसिद्ध शान्ति देवी केस ने घी का काम दिया। केस चोटी से एड़ी तक बनावटी था। असगरी बेगम (शान्ति देवी) को दिल्ली लाने, वनिता आश्रम में प्रविष्ट कराने या धर्म परिवर्तन कराने में पिताजी या अन्य किसी हिन्दू या आर्य कार्यकर्ता का हाथ नहीं था, परन्तु दिल्ली के कुछ मुसलमानों ने शान्ति देवी के पिता और मुसलमान पति को प्रेरणा देकर बिल्कुल झूठा मुकदमा दायर करवा

दिया, जिस की दो-तीन पेशियों में ही असलियत प्रकट हो गई. और हम लोगों की निर्दोषता का अदालत ने फैसला कर दिया, परन्तु अदूरदर्शी मदान्ध लोगों ने जो विष बखेरा था, वह अपना काम कर गया। नासमझ मुसलमानों का पिता जी के प्रति विद्वेषभाव चरम सीमा तक पहुंच गया।

परिणाम यह हुआ कि वायुमण्डल सन्देह और आशंका से भर गया। पिता जी के मन में खतरे या खतरे की धमकी से सदा उल्टी ही प्रतिक्रिया उत्पन्न होती थी। वह खतरे से डरने की जगह, खतरे का सामना करने और उस पर हावी होने के लिये तत्पर हो जाते थे। हम लोगों की चिन्ता या सावधानता उन पर कोई प्रभाव नहीं डालती थी। कभी-कभी तो जब कभी उन्हें यह सन्देह हो जाता था कि लोगों ने उन की संरक्षा के लिये पहरा लगाया है, तो रात के समय चुपचाप अकेले बाजार में घूमने के लिये निकल जाते थे, और लालकुआं, सदर-बाजार आदि प्रमुख मुसलमान हिस्सों का चक्कर काट जाते थे। इन सब कारणों से हम लोग सदा शंकित रहते थे। कब क्या अनहोनी हो जाय, इस की सांसों प्रतीक्षा करते रहते थे।

सो जब दुर्घटना का पहला समाचार मिला तो ऐसा अनुभव हुआ जैसे जो होनी थी, वह हो कर रही।

एक और भी बात थी, जिसने हमारे हृदयों को इस दुर्घटना के लिये तैयार सा कर दिया था। अपने सदा के स्वभाव के सर्वथा विपरीत, लगभग एक मास से पिता जी शरीरत्याग की चर्चा किया करते थे। यों स्वभाव से वह घोर आशावादी थे—जैसा कि एक कट्टर आस्तिक होना चाहिये। परन्तु बलिदान से लगभग एक घन्टा पूर्व ही उनकी बातचीत का रुख बदल गया था। मैंने उनकी कई बड़ी-बड़ी बीमारियां देखी थीं। वह कभी हारी हुई बात नहीं करते थे. हारी हुई बात करने वाले को ढाढस दे कर कहा करते थे, तुम चिन्ता क्यों करते हो? अभी धर्म की सेवा के लिये मेरे शरीर की आवश्यकता है, उस की रक्षा परमात्मा करेगा। १९२६ के अन्त में जब उन पर निमोनिया का आक्रमण हुआ, उस से पूर्व ही उन की भाषा में परिवर्तन आ गया था। नवम्बर के अन्त में वह लाहौर गये और गुरुदत्त भवन में व्याख्यान दिया। सुनने वाले बतलाते हैं कि उस व्याख्यान में उन्होंने यह भाव स्पष्ट रूप से व्यक्त किया था कि सम्भवतः लाहौर में उन का यह व्याख्यान अन्तिम है, ऐसा ही भाव उन्होंने दो-तीन अन्य व्याख्यानों में भी प्रकट किया था।

रोगी होने पर तो वह प्रायः नित्य ही ऐसी बात करते थे, यों भाषा में कुछ भेद आ गया था।

बलिदान से दो दिन पूर्व व्याख्यान वाचस्पति पं० दीनदयालु जी शास्त्री आपका स्वास्थ्य समाचार पूछने आये। कुशल समाचार पर आपने कहा डाक्टर कहते हैं अच्छा है, शास्त्री जी ने मुस्करा कर पूछा कि आपकी क्या सम्मति है? पिता जी ने उत्तर दिया—मेरी तो अब जीने की इच्छा नहीं है'। इस पर शास्त्री जी ने कहा—

'स्वामी जी, मुझ से मालवीय जी एक वर्ष बड़े हैं, और आप उन से एक वर्ष बड़े हैं। अभी हम लोगों को बहुत सा काम करना है। आप क्यों इतनी जल्दी मोक्ष की तैयारी करने लगे। अब तो आप राजी हो जाओगे।' पिता जी ने उत्तर दिया—

पण्डित जी, इस समय मुझे मोक्ष की इच्छा नहीं, मैं तो चोला बदल कर दूसरा शरीर धारण

करना चाहता हूं। अब यह शरीर सेवा के योग्य नहीं रहा, अच्छा है कि फिर भारतवर्ष में ही पैदा हो कर फिर इस की सेवा करूं।

२२ दिसम्बर के प्रातःकाल ५ बजे के लगभग पिता जी का सेवक धर्मसिंह मुझे घर से बुलाने आया। उसी समय डा सुखदेव जी को और लाला देशबन्धु जी को भी बुलाया गया था। हम सब के एकत्र हो जाने पर पिता जी ने कहा—'भाई, मेरी वसीयत लिखा लो। इस शरीर का कुछ भरोसा नहीं। कब क्या हो जाय, यह भगवान के सिवाय किसी को पता नहीं।'

उस दिन पिता जी की तबियत काफी अच्छी समझी जा रही थी। डा० अन्सारी ने पहले दिन कहा था कि अब कोई खतरा नहीं रहा। डा० सुखदेव जी ने निवेदन किया कि अब चिन्ता या घबराहट की कोई बात नहीं। आप शीघ्र ही बिल्कुल ठीक हो जायेंगे हम लोग भी इस निवेदन में शामिल हो गये, और यह समझ कर कि वसीयत लिखने का पिता जी के दिल पर बुरा असर न हो, लिखने में आनाकानी करने लगे। पिता जी इस बात से कुछ खिन्न से हो गए, और कहा—'अच्छा भाई. तुम्हारी मर्जी, पर मैं जो कुछ चाहता हूँ वह सुन तो लो'। जब चाहो तब लिखा लेना, हम लोग सुनने लगे। उस समय हम लोग चर्म के चक्षुओं से देखते थे। और पिता जी ज्ञान के चक्षुओं से। अन्यथा हमसे ऐसी हिमाकत भरी भूल न होती कि हम उन के शब्दों को लेखबद्ध न करते। हम से इतनी बड़ी भूल हुई कि उसका मार्जन नहीं हो सकता। यह समझ कर कि रोगी को यह अनुभव न होने देना चाहिये कि उसकी दशा चिन्ताजनक है हम ने उस समय की बातों को पूरी तरह हृदयंगम नहीं किया। पीछे से स्मृति को ताज़ा करने पर निम्नलिखित बातें ध्यान में आईं—

आपने अपनी निम्नलिखित इच्छायें प्रकट की थीं—

१ मैं आर्यसमाज का इतिहास लिखना चाहता था। लिख नहीं सका, इन्द्र उसे लिख कर पूरा कर दे।
२ तेज और अर्जुन पत्र मेरी भावना के अनुसार चलते रहें।
३ गुरुकुल की रक्षा की जाय।

२३ दिसम्बर को, बलिदान से कुछ ही समय पहले शुद्धिसभा के प्रधान सर राजा रामपालसिंह के स्वास्थ्य सम्बन्धी तार के उत्तर में पिता जी ने जो तार दिलवाया था, उस में लिखा था कि अब तो यही इच्छा है कि दूसरा शरीर धारण कर इस जीवन के अधूरे काम को पूरा करूं।

यही कारण थे कि जब मुझे जीवनलाल जी ने स्वामी जी पर गोली चलने का समाचार दिया तब वह आकस्मिक नहीं प्रतीत हुआ। सुन कर ऐसा अनुभव हुआ कि यह तो होने वाला ही था—पर हुआ कैसे ? अभी तो हम लोग उठ कर आये हैं, इतने में क्या हो गया।

जा कर देखा तो किंकर्तव्यता सामने आ गई। ध्यान उस ओर चला गया। शहर में बलिदान का समाचार हवा की तरह फैल गया, और श्रद्धानन्द बाजार में भीड़ इकट्ठी होने लगी। हरेक के दिल में दुःख था, और आंखों में जोश। जिसे देखता, वह इतना प्रभावित दिखाई देता कि जितना कोई सम्बन्धी भी नहीं हो सकता। मैं उस समय अपने को विशेष रूप से दुःखी कैसे समझ लेता। मैं उन का पुत्र था, पर अन्य लोग उन की स्मृति पर मुझ से बढ़ कर दावा कर रहे थे। अनुभव होता था कि

सारी दुनिया मेरे साथ समवेदना प्रकट करना चाह रही है—औरमेरी अपेक्षा भी मुझ से अधिक वेदना प्रकट करना चाहती है। इस कारण मैं संवेदना का पूरा अनुभव नहीं कर सका, और न उसे प्रकट ही कर सका।

इस सहानुभूति की भावना के साथ एक और चीज़ भी मिल गई। स्वभावतः मुझे अनुभव हुआ कि यह बड़ा भारी बलिदान था। जैसी कहानियां और घटनायें इतिहास में पढ़ने आये थे, यह तो वैसी हो गई। मेरे पिताजी शहीद हो गये, वे अमर पदवी को प्राप्त हो गये, इस विचार ने मेरे दिल को भर दिया। इसे मनोविज्ञान के पण्डित किस दृष्टि से देखेंगे, शायद वे मेरी भावना को क्षुद्र ही समझेंगे, यह सम्भावना होते हुए भी यह स्वीकार कर लेने में मुझे संकोच नहीं कि इस विचार ने मेरे हृदय में अभिमान मिश्रित सन्तोष की बाढ़ सी ला दी। परिणाम यह हुआ कि जब तक वह दिल्ली के इतिहास में स्मरणीय अर्थी का जलूस निगमबोध घाट पर पहुंच कर, दाहक्रिया कर के, वापिस नहीं आ गया, तब तक मैं बिल्कुल स्थिर रहा। शायद मुझ से मिलने वाले मेरी उस स्थिरता से आश्चर्यित होते होंगे। या तो उसे वे मेरी दृढ़ता का प्रमाण मानते होंगे अथवा हृदयहीनता का। वस्तुतः दोनों ही बातें नहीं थीं। वह स्थिरता उन परिस्थितियों का परिणाम थी, जिन का मैंने ऊपर वर्णन किया है।

मैंने स्वयं इस बात को तब अनुभव किया, जब यमुना के तट से लौट कर, और सहानुभूति प्रकट करने वाले मित्रों से अवकाश पा कर मैं अकेला अपने लिखने के कमरे में पहुंचा। कमरे में मेरी बैठने की कुर्सी के ऊपर पिताजी का बड़ा चित्र था (अब वह मेरी कुर्सी के सामने रखा हुआ है) और मैं था। उस समय एकदम मैंने अनुभव किया कि मैं अकेला रह गया। मेरे बड़े भाई पहले ही विलायत जा कर लापता हो चुके थे, पिताजी चले गये—और अब इस तूफानी दुनिया में—आकाश और पृथ्वी के बीच में—मैं अकेला लटकता रह गया. मन में यह भाव आते ही मेरा वह कृत्रिम धर्म और स्थिर भाव जाता रहा और आंसू मानों बांध को तोड़ कर बह निकले। मैं बहुत देर तक, और आवाज के साथ रोया—यह मुझे भली प्रकार याद है।

—

मैत्री की महत्ता

जो व्यक्ति मित्रों के साथ बिगाड़ नहीं करता वह अपने घर से बाहर जाने पर बहुत खाने-पीने को पाता है, बहुत से लोग उस के सहारे जीते हैं। जिन-जिन जनपद, निगम या राजधानियों में जाता है, सर्वत्र सम्मानित होता है। उसे चोर परेशान नहीं करते, राजा अपमान नहीं करता, वह सभी शत्रुओं पर विजय प्राप्त करता है, क्रोध रहित (प्रसन्न-मन अपने घर आता है, सभा में समादृत होता है और जाति-बन्धुओं का उत्तम (श्रेष्ठ व्यक्ति) होता है। दूसरे का सत्कार कर के स्वयं सत्कार पाता है, दूसरों का गौरव कर स्वयं गौरव-युक्त होता है. प्रशंसा और यश प्राप्त करता है। पूजा करने वाला पूजा पाता है और वन्दना करने वाला प्रतिवन्दना यश और कीर्ति को प्राप्त होता है। उसे गौवें प्राप्त होती हैं, खेत में बोया हुआ अन्न खूब उपजता है, पुत्रों के लिए फल प्राप्त होता है। जैसे खूब जड़ और शाखा फैलाये हुये निग्रोध-वृक्ष का मालवा लता कुछ बिगाड़ नहीं सकती, वैसे ही उसके शत्रु उसका कुछ भी बिगाड़ नहीं सकते। ★

भारतीय वाद्य संगीत

भारत में संगीत को ब्रह्मप्राप्ति का साधन माना गया है। पौराणिक गाथाओं में संगीत का आरम्भ ब्रह्मा से ही माना जाता है। कई प्रकार के नृत्य, संगीत और यहां तक की कई वाद्यों को भी देवी-देवताओं के साथ जोड़ा हुआ है।

रुद्र के संगीत और नृत्य से तो सारे भारत-वासी परिचित ही हैं। उन के नृत्य का भाव आध्यात्मिक है और विकास अथवा प्रलय का प्रतीक माना जाता है। रुद्र का डमरु भी 'आकाश तत्व' का प्रतीक है क्योंकि आकाश से ही सारी ध्वनि उत्पन्न होती है। कृष्णरूप में विष्णु का ही नाम वंशीधर या मुरलीधर है। इसी प्रकार सरस्वती का संगीत और काव्य से अभिन्न संबन्ध है।

इन्द्रलोक के गन्धर्व, किन्नर, नारद, विद्याधर और विश्ववसु इत्यादि सभी का संगीत के किसी न किसी अङ्ग से सम्बन्ध है। वाद्य-संगीत और नृत्य की सृष्टि इन्हीं विभूतियों ने की है भारत के लम्बे इतिहास में अनेक वाद्यों का आविष्कार हुआ है। और हर भारतीय वाद्य में पूरी मौलिकता और बुद्धि विलक्षणता का परिचय मिलता है। अलग-अलग बनावट और ध्वनि के अनुसार साधारण से साधारण साज से लेकर बड़े-बड़े पेचीदा तक ६०० साज भारत में पाये जाते हैं। इन में तार वाले, फूंक से बजने वाले तथा थाप से बजाये जाने वाले सब तरह के साज शामिल हैं। कुछ वाद्यों का चलन अब समाप्तप्राय है। कुछ में समय के साथ परिवर्तन हुआ है और कुछ आज भी वैसे ही हैं, जैसे वे आज से सदियों पहले थे।

प्राचीन वाद्य

अम्बुज, अलापिनी, परिवर्धिनी, विपंची, चित्रा, कच्छमी और मत्तकोकिला आदि का रूपांतर ही आज के वीणा, सितार, गोट्टुवाद्यम, विचित्र वीणा, सरोद सारंगी और इसराज आदि साज हैं। इसी प्रकार प्राचीन पटाहा, मुराज, मरदला, भेरी, दुन्दभी आदि का नवीन रूप मृदंगम् और तबला आदि हैं।

प्राचीन भारतीय वाद्यों का ज्ञान हमें अपने प्राचीन साहित्य और मूर्तिकला से मिलता है। संगीत सम्बन्धी संस्कृत वाङ्मय, वैदिक ऋचाओं भागवत पुराण, बौद्ध ग्रंथों और जातक कथाओं में भी हमें प्राचीन वाद्यों का प्रचुर उल्लेख मिलता है। भरतमुनि का 'नाट्यशास्त्र' और सारंगदेव का 'संगीत रत्नाकर' आदि संस्कृत ग्रन्थों में वाद्यों का विस्तृत वर्णन है। इसी प्रकार कालिदास की संस्कृत रचनाओं और तामिल और तेलुगु के साहित्य में भी वाद्यों की चर्चा है। अबुल फजल के प्रसिद्ध पारसी ग्रन्थ 'आइने-अकबरी' में मुगल कालीन वाद्यों का उल्लेख है।

नर्तक-नर्तकियों की प्राचीन मूर्तियों से भी भिन्न काल में प्रयुक्त होने वाले वाद्यों का हमें पता चलता है। कौन से साज खड़े होकर बजाये जाते थे और कौन से बैठ कर, यह भी इन मूर्तियों की मुद्राओं से स्पष्ट है। अजन्ता की गुफाओं की चित्रकारी से भी प्राचीन भारतीय वाद्यों और उनके बजाने के ढंग आदि का अच्छा परिचय मिलता है।

वाद्यों का उत्तम संग्रह

कलकत्ता के विचित्रालय में भारतीय साजों का अनुपम संग्रह है। कंठ संगीत का भारत में सदा बहुत ऊंचा स्थान रहा है। पर इस का यह मतलब नहीं कि यहां कभी भी वाद्य संगीत को नीची दृष्टि से देखा गया हो। हमारे यहां वाद्य केवल संगत के लिए नहीं बल्कि स्वतन्त्र रूप से भी बजाये जाते थे और इन के बजने की एक स्वतन्त्र कला थी। भारतीय संगीत में स्वर की

मधुरता को प्रधानता दी गई है और पश्चिमी संगीत में अनेक वाद्यों के स्वर ताल के मेल की। यही कारण है कि भारत में वाद्यवृन्द या 'आरकेस्ट्रा' जैसी कोई चीज विकसित नहीं हुई। पूजा आदि में अवश्य दो चार साज एक साथ बजाये जाते थे। बुद्ध की 'शब्द पूजा' में वीणा; छोटी-छोटी ढोलकें, बांसरी आदि कुछ साज बजाये जाते थे। इस प्रकार का उल्लेख मिलता है कि जब सम्राट अशोक तीर्थ-यात्रा करने जाते थे तो वाद्य-वादकों की एक मंडली उनके साथ रहती थी। गुप्तकाल में युद्ध के समय वीणा, मृदंग, पुष्कर, मुराज, तुरही, शंख, दुन्दभी और घंटे आदि का प्रयोग किये जाने का उल्लेख मिलता है।

चीनी तथा अन्य विदेशी यात्रियों ने भी अपने लेखों में भारतीय वाद्यों को उल्लेख किया है। बाण ने अपने 'हर्षचरित' में लिखा है कि जब सम्राट हर्ष अपने स्नानागार में प्रवेश करते थे, उस समय 'शृङ्ग' (नरसिंहा) और वीणा, ढोल आदि से संगीत बजाया जाता था।

मुगलकाल में 'नौबत' का रिवाज था, जिस में नौ लोग बजाते थे। वैसे नौबत में प्रायः नौ से अधिक गायक और साज बजाने वाले होते थे और यह शहरों और महलों के फाटकों की बुर्जियों में बजायी जाती थी। अकबर के नक्कार-खाने में कुर्रा, नक्कारा, ढोल, सुरनई, नफीरी, करना और शृङ्गफनी आदि साज थे।

आधुनिक युग में उदयशंकर ने भारतीय वाद्य वृन्द (आरकेस्ट्रा) बनाने की दिशा में काफी योग दिया है। अ. भा. रेडियो की ओर से रविशंकर और टी. के. जयराम अय्यर के निर्देशन में वाद्य वृन्द की रचना की गई है, जिस से सभी रेडियो श्रोता परिचित होंगे। पर देश में वाद्य संगीत की उन्नति के लिए अभी बहुत से परीक्षण और कार्य करने होंगे तभी श्रोतागण इस के महत्व को समझ जायेंगे।

—

ऐकमत्यवर्ग के कुछ प्रसिद्ध शब्द

श्री धर्मदेव विद्यामार्तण्ड

इस लेख में मैं ऐकमत्यवर्ग के निम्न शब्दों का विवेचन कर के सूक्ष्म भेदों को ध्यान में रखते हुए संस्कृत और हिन्दी के समानार्थक शब्द निश्चित करने का प्रयत्न करूंगा।

Agreement, accord, Understanding, concord, harmony, unity

Agreement=समयः, संवित् (सं०) स्वीकारपत्र (इकरार नामा) ऐग्रीमेन्ट एक अत्यन्त विधानात्मक शब्द है। इस से प्रायः शर्तों का अन्तिम निर्णय सूचित होता है। यह आवश्यक नहीं कि यह लिखित रूप में हो यद्यपि अंग्रेजी विधि के अनुसार जब तक यह लिखित रूप में न हो तब तक वैधरूप से वह प्रभावजनक नहीं होता। वैब्स्टर के पर्याय कोष में इस के विषय में ठीक ही लिखा है कि 'Agreement is the most positive-word, it usually implies a final settlement of terms.'

(Webster's Dictionary of Synonyms P. 36).

संस्कृत में ऐग्रीमेन्ट के लिये 'संवित् और समयः' इन शब्दों का प्रयोग होता है पर हिन्दी में समय शब्द का इस अर्थ में प्रयोग प्रचलित नहीं क्यों कि उस से काल का ही अधिकतर ग्रहण होता है। संवित् शब्द का प्रयोग अब प्रचलित हो रहा है यद्यपि सर्व साधारण उस को समझने में कठिनाई अनुभव करते हैं। विधि वा कानून में ऐग्रीमेन्ट के लिये स्वीकारपत्र शब्द का प्रयोग संस्कृत और हिन्दी में सुगम है जिसे उर्दू में इकरारनामा के नाम से पुकारते हैं। Agreement के लिये प्रादेशिक भाषा कोषों में निम्न प्रकार के शब्द पाये जाते हैं।

बंगला—अन्वय, ऐक्य, एकमत।
कन्नड़ - अनुमति, ऐक्य, एकवाक्यते।
तेलुगु—समयमु, सम्मतमु, समाधानमु, ऐकमत्य एकभावमु, ऐकमत्यमु।
मलयालम—निश्चयम्, समयम्, संवित्, ऐक्यम्, सम्मति, संवादम्, स्वीकारम्।
मराठी परस्पर सम्मति, करार, ठराव, करारनामा।
गुजराती—एकरूपता, संमति, अनुमत।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि अनेक प्रादेशिक भाषाओं में भी ऐग्रीमेन्ट के लिए समय और संवित् ये संस्कृत के शब्द प्रचलित हैं। श्री जगदीशप्रसाद चतुर्वेदी M. A. LL. B., P. C. S. कृत 'विधि शब्द सागर' में 'ऐग्रीमेन्ट' का Contract से भेद करने के लिये ऐग्रीमेन्ट के लिये 'प्रतिज्ञा' और Contract के लिये संवित् शब्द का प्रयोग किया गया है। इस 'प्रतिज्ञा' शब्द का Promise से भेद करने के लिये प्रतिश्रुति शब्द का प्रयोग उचित समझा गया है।

Accord=सामञ्जस्यम्, ऐकमत्यम् (सं) ऐकमत्य (हिं)।

अंग्रेजी के ऐकौर्ड शब्द का प्रयोग सरकारों, वर्गों वा व्यक्तियों में परस्पर मतभेद पर्याप्त मात्रा में दूर हो कर ऐकमत्य के अनुकूल वातावरण बनाने के अर्थ में होता है। इस में यह भी भाव आता है कि सब बातों का विस्तार से अन्तिम निश्चय अभी नहीं हो पाया और निश्चय की शर्तें प्रकाशित किये जाने की अवस्था में नहीं हैं तथापि अन्तिम समाधान के योग्य अवस्थाएं पूरी की जा चुकी हैं। इस के लिये

संस्कृत में सामञ्जस्यम् और सुगमता की दृष्टि से ऐकमत्यम् शब्द का प्रयोग उचित है।

'The use of this term 'accord' often implies that all details have not yet been settled or that the terms of the agreement are not yet ready for publication, but that the conditions necessary for a final agreement have been fulfilled'
Webster's Dictionary of Synonyms (P. 36).

प्रादेशिक भाषा कोषों में इस के लिए निम्न शब्दों का प्रयोग पाया जाता है—

बं०—सम्मति, सामञ्जस्य, समन्वय।
कं०—सम्मति, स्वीकरण, सामरस्य।
ते०—अङ्गीकारमु, आनुगुण्यमु, ऐकमत्यमु, एकचित्तमु, ऐकताल्यम।
म० – रुकार, शान्ततेचांतहु मिलाफ।
गु०—मनमेलाय, संमति, एकराग।
आ०—सम्मति, ऐक्यभाव।

इसलिए सामञ्जस्यम् और ऐकमत्यम् इन शब्दों का संस्कृत में और ऐकमत्य वा सहमति शब्द का Accord के लिए हिन्दी में प्रयोग उचित है। यद्यपि प्रायः प्रादेशिक भाषाओं में सम्मति शब्द का प्रयोग भी इस अर्थ में प्रचलित है तथापि हिन्दी में उस का प्रयोग Opinion के लिए ही सर्वत्र प्रचलित हो गया है अतः उस को ग्रहण करने में कठिनता है।

Concord = सहृदयम्, आनुकूल्यम् (सं०), सहृदयता, एकतानता (हि०)।

अंग्रेजी का कनकौर्ड शब्द Con, Cord इन लैटिन शब्दों से मिल कर बनता है। Con का अर्थ Cum—सम् इकट्ठा और Cord का हृदय यह अर्थ होता है इसलिए 'सहृदयं सांमनस्यम् अविद्वेषं कृणोमिवः' अथर्व ३. ३०. १ इत्यादि में प्रयुक्त सहृदयम्' इस शब्द का यह शब्दानुवाद है और संस्कृत में इस तथा आनुकूल्यम्, और एकतानता शब्दों का प्रयोग Concord के लिए करना सर्वथा उचित है। हिन्दी में सहृदय शब्द का विशेषण के रूप में अधिक प्रयुक्त होने के कारण सहृदयता अथवा एकतानता शब्द का प्रयोग किया जा सकता है। प्रादेशिक भाषा कोषों में Con cord के लिये निम्न शब्द प्रचलित हैं।

बं०—मिलन, एकता, अन्वय, एकतान, सुरेरमिल।
क०—मैत्री, सांगत्य, सन्धि, स्वरमैत्री, समानाधिकरण, अन्वय।
ते०—आनुकूल्यमु, सम्मति, ऐकमत्यमु, एकतानमु।
मल०—ऐक्यम्, चित्तैक्यम्, अविसंवादम्, अविरोधम्, प्रीति, प्रणयम्, सन्धि, निश्चयम्, अनुषङ्गम्, अन्वयम् तालैक्यम्, स्वरैकता।
मल० जुलतासम्बन्ध, मिलाफ, ऐक्य, मेल, समानाधिकरण।
गु०—एक राग, मेलाप, अविरोध।
आ०—मिलभाव, मिलन, एकमत।

इनमें से एकतानता, चित्तैक्यम्, आनुकूल्यम, साङ्गत्यम्, इत्यादि शब्दों का संस्कृत में प्रयोग किया जा सकता है। हिन्दी में सरलता की दृष्टि से एकतानता और सहृदयता शब्दों का प्रयोग अधिक उचित प्रतीत होता है।

Harmony = साम्मनस्यम्, सामरस्यम्, समतानता (सं०) समस्वरता (हिं०)।

अंग्रेज़ी के 'हार्मनी' शब्द के अन्दर जो

मुख्य भाव आता है और जो इसे ऐग्रीमेन्ट इत्यादि से भिन्न करता है उसका निर्देश जेम्स फर्नाल्ड कृत Standard Handbook of Synonyms में इन शब्दों में किया गया है—

'When tones, thoughts or feelings individually different, combine to form a Consistent and pleasing whole, there is harmony. Harmony is deeper and more essential than agreement.

(Handbook of Synonyms by V. Fernald Pages 228).

अर्थात् जब स्वर, विचार और भावनाएं प्रत्येकशः पृथक् पृथक् होती हुई भी एक सम्बद्ध और हर्षदायक संयुक्तरूप धारण कर लेती है। 'हार्मनी' में Agreement की अपेक्षा अधिक गहराई और सच्चाई होती है। हार्मनी' की उपर्युक्त विशेषता और उसके मूलार्थ को ध्यान में रखते हुए (जो लैटिन और ग्रीक् के Harmos शब्द से मिलता है और उसका अर्थ मेल वा जोड़ Joint Fitting होता है अंशों का मिलकर एक सम्बद्ध संयुक्त रूप बन जाना यह उसका मूल धात्वर्थ है।) हम ने उसके लिए साम्मनस्यम्, सामरस्यम्, समतानता, स्वर मैत्री, स्वर माधुर्यम, इन शब्दों को संस्कृत में और समतानता, स्वरमैत्री और स्वरमाधुर्य शब्दों को हिन्दी में चुना है। प्रादेशिक भाषा-कोषों में Harmony के लिए निम्न शब्दों का प्रयोग पाया जाता है—

बं०— समतान, स्वरमिल, स्वरसामञ्जस्य, ऐक्य।

आ०—मिल, एकता, मिलाप्रीति, सुवरमिल।

क०—सामरस्य, हितपरिणाम, मेल, स्वर-मेल, स्वरमैत्री, मधुरनाद।

ते०—एकस्वनमु, समतालमु, श्राव्यत, मधुरस्वरमु, स्वरमाधुर्यमु, अविरोधमु, ऐकमत्यमु, सम्मति, स्नेहमु।

मल०— तालैक्यम्, स्वरैक्यम्, स्वरसंगम् एकतालम्, सुश्राव्यत, स्वरमाधुर्यम्, सुस्वरत, संवादम्, अविरोधम्, ऐक्यम्, संगम्।

मल०— मेल, मिलाप, ऐक्य, एकवाक्यता, मधुर आवाज।

गु०—मेल, मिलाप, ऐक्य, एकमत।

Unity=ऐक्यम्, एकता।

अंग्रेजी के युनिटी शब्द के लिए ऐक्यम् और हिन्दी में एकता शब्द का प्रयोग स्पष्ट और सर्व-सम्मत है अतः उसके विवेचन की आवश्यकता नहीं।

Understanding=अन्योन्य निश्चयः, पारस्परिक निश्चय।

अंग्रेजी का 'अन्डरस्टैन्डिंग्' यह शब्द स्वीकृत समाधान में से सबसे कम प्रभावजनक है। इस में कुछ निश्चित वचनों और प्रतिज्ञाओं की सत्ता और भिन्न-भिन्न वर्गों द्वारा उनके समादर का भाव सूचित होता है इस लिये उसके लिए अन्योन्य निश्चय व पारस्परिक निश्चय शब्द का संस्कृत और हिन्दी में प्रयोग उचित है।

❦

शान्ति का स्वप्न साकार होगा

श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति

विश्व भर के आर्यों की प्रतिनिधि संस्था, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की ओर से, बुद्ध-जयन्ती के शुभ अवसर पर देश-देशान्तरों से भारत में आए हुये महानुभावों का हृदय से स्वागत करता हूँ। भारत के धार्मिक इतिहास में एक ऐसा अन्धकारमय समय आ गया था जब जाति धर्म की सच्ची भावना को खो बैठी थी। धर्म का स्थान रूढ़ियों ने ले लिया था, पशु-हिंसा को मोक्ष की प्राप्ति का साधन माना जाने लगा था, जन्म के कारण ऊंच-नीच की भावना इतनी प्रबल हो गई थी कि कर्मशील तपस्वी ब्राह्मणों का अभाव सा हो गया था। केवल कुछेक रिवाजों को धर्म का नाम देकर धर्म के वास्तविक रूप चरित्र-निर्माण की उपेक्षा की जा रही थी। जाति की ऐसी शोचनीय दशा थी, जब भारत के एक सुन्दर प्रदेश में महात्मा बुद्ध ने जन्म लिया और यथार्थ ज्ञान प्राप्त करके आर्य धर्म का संदेश संसार भर को दिया। महात्मा बुद्ध द्वारा उपदिष्ट धर्म का सार आर्य-सत्यचतुष्ट्य में आ जाता है जिसकी धर्म-चक्र-प्रवर्तन सूत्र में विशद व्याख्या है। धम्मपद के धर्मिष्ठ वर्ग में आर्य की जो विशद व्याख्या की गई है उसने आर्य शब्द के गौरव को बहुत बढ़ा दिया है।

न तेन अरियो होति येन पाणानि हिंसति,
अहिंसा सब्ब पाणानं अरियोति पवुच्चति।

प्राणियों की हिंसा करने से कोई आर्य नहीं होता। सब प्राणियों की हिंसा न करने वाला मनुष्य ही आर्य कहलाता है।

मनुष्य जाति के कल्याण के लिए महात्मा बुद्ध ने जिस क्रियात्मक धर्म का उपदेश दिया उसे सहस्रों भिक्षुओं ने और महाराज अशोक धर्मिष्ठ नरपतियों ने संसार के कोने-कोने में फैला दिया आज भी पृथ्वी पर बौद्ध धर्म के अनुयायियों की संख्या अन्य सब धर्मों के अनुयायियां की अपेक्षा अधिक है।

समय का चक्र चलता गया। लगभग २४०० वर्षों के पश्चात् फिर देश पर वैसा ही अन्धकार छा गया जैसा बुद्ध के जन्म के समय छाया हुआ था। अब भी धर्म का स्थान रूढ़ि ने, तप का स्थान वेष ने, यज्ञ का स्थान पशुबलि ने और गुणों का स्थान जन्मगत जाति भेद ने ले लिया था। जिस महापुरुष ने उन्नीसवीं सदी में इन अनार्य प्रवृत्तियों को रोका और सच्चे आर्य धर्म का उद्धार करके फिर से उसी भावना को जागृत किया था जिसे महात्मा बुद्ध ने जागृत किया था तो वह महर्षि दयानन्द सरस्वती थे।

आर्य समाज महर्षि दयानन्द का सन्देश-वाहक है। वह रूढ़ियों का शत्रु, आर्य जीवन का समर्थक और जातपात तथा अस्पृश्यता का घोर विरोधी है। वह वेद के 'अहिंसा परमोधर्मः' इस उपदेश वाक्य में अटल विश्वास रखता है। अतः आर्य समाज आर्य-धर्म के बड़े प्रचारक महात्मा बुद्ध की पुण्य जयन्ती के अवसर पर अन्य देशों से भारत पावनी भूमि में पधारे हुये बन्धुओं का हृदय से स्वागत और अभिनन्दन करता है। हमें आशा रखनी चाहिए कि भूमण्डल के भिन्न-भिन्न देशों में रहने वाले परन्तु समान धर्म-बन्धुओं का यह शुभ समागम संसार के लिये कल्याणकारी होगा, मनुष्य जाति महात्मा बुद्ध के बतलाये मौलिक आर्य-सत्यों को अपना मार्गप्रदर्शक बनायेगी और घोर स्वार्थ तथा परस्पर विरोध की ज्वाला में जलती हुई मनुष्य जाति परस्पर विश्वास तथा शान्ति की स्थापना के स्वप्न को पूरा होता देख सकेगी।

आदर्श पत्र लेखक कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर

श्री बनारसीदास चतुर्वेदी

अपने साठ पैंसठ वर्ष के साहित्यिक जीवन में कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर को हजारों ही चिट्ठियां लिखनी पड़ी होंगी। उन में से कई सौ पत्र सुरक्षित भी रह गये हैं। जो पत्र हमारे देखने में आये हैं, उन में दीनबन्धु ऐन्ड्रूज को लिखे गये पत्र अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं और वे 'मित्र के नाम पत्र' (लैटर्स टु ए फ्रैंड) नामक पुस्तक में प्रकाशित हो गये हैं। उन्होंने अपनी सौभाग्यवती पुत्रवधू प्रतिमा ठाकुर को जो चिट्ठियां लिखीं थीं, उन का भी संग्रह हम ने देखा है। कुछ पत्र विश्वभारती पत्रिका में भी छपे थे, कुछ रोलां और गोर नामक अङ्गरेजी किताब में भी। गुरुदेव के (कवीन्द्र को हम लोग शान्ति निकेतन में इसी नाम से पुकारते थे) चार पांच पत्र मेरे पास भी सुरक्षित हैं। जिन में दो बंगला भाषा में हैं, और दो तीन अंग्रेजी में। माडर्न रिव्यू की पुरानी फाइलों में भी उनके बंगला पत्रों का अंग्रेजी अनुवाद छपा था।

पत्रों के महत्व को गुरुदेव भली भांति जानते थे। उन्होंने मि० एन्ड्रूज को सन् १९२१ में लिखा था कि दो आदमियों के बीच जो दूरी होती है वह भी अपना खास महत्व रखती है और चिट्ठियों में जो भाषण शक्ति होती है, वह जिह्वा या जबान में नहीं होती।

दीनबन्धु एन्ड्रूज गुरुदेव के अनन्य भक्त तथा परम मित्र थे और उन्होंने अपने आप को गुरुदेव को समर्पित कर दिया था। दीनबन्धु का यह आत्मसमर्पण भारतीय इतिहास की एक खास घटना है और उस से दोनों देशों को लाभ हुआ। दीनबन्धु ने भारत की जो सेवा की उससे भला कौन इन्कार कर सकता है? और गुरुदेव के हृदय में इगलैंड के प्रति जो विश्वास बाकी रह गया था, उस का कारण दीनबन्धु ऐन्ड्रूज ही थे। एक बार गुरुदेव ने अपने एक पत्र में ऐण्ड्रूज के इस प्रेम की चर्चा बड़ी सहृदयतापूर्वक की थी।

न्यूयार्क से उन्होंने अपने १७ दिसम्बर १९२० के पत्र में लिखा था—

'जिस तरह बवण्डर में सूखी पत्तियां चक्कर काटती हैं, उसी तरह जब चन्दा उगाने की आकांक्षा की आंधी में मेरे विचार चकरा रहे थे, तब एक चित्र मेरे हाथ में आया—वह था सुजाता का बुद्ध भगवान को दुग्ध-अर्पण। उस चित्र का सन्देश मेरे दिल की गहराई पर पहुँच गया।' वह मानों मुझ से कह रहा था—

'दूध का प्याला बिना मांगे तभी तुम्हारे सामने आता है, जब तुम तपस्या कर लेते हो। वह प्रेम के साथ तुम्हें अर्पित किया जाता है और केवल प्रेम ही सत्य के प्रति अपना अर्ध्य-दान कर सकता है।' उसी समय तुम्हारी शकल मेरे दिमाग में आ गई। दूध का यह प्रेमपूर्ण प्याला मुझे तुम्हारे हाथों मिला है। बड़े आदमियों की हुण्डियों की अपेक्षा वह अनन्त गुना कीमती है। जब मैं एकान्त के जंगल में भूखा भटक रहा था बन्धुत्व और सहानुभूति के अभाव में तब तुम मेरे लिए प्रेम भरा प्याला लाये। यही दरअसल जीवन दान करने वाला भोजन है, जो एक प्राणी द्वारा दूसरे को बिना किसी माल-भाव के दिया जाता है।

यदि हम उपमा अलंकार को आगे जारी रखें तो हमें कहना होगा कि कवीन्द्र श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने अपनी इस सुजाता को दिल खोल कर जैसे सहृदयतापूर्ण पत्र लिखे हैं, वैसे उन्होंने

अपनी पुत्रवधू श्रीमती प्रतिमा देवी को भी नहीं लिखे।

दीनबन्धु एण्ड्रूज को लिखे पत्रों में गुरुदेव ने मानों अपना हृदय ही उंडेल दिया है। मानव जीवन के अनेक प्रश्नों पर इन पत्रों में काफी प्रकाश डाला गया है। और इन पत्रों में कम से कम सौ सवा सौ वाक्य तो ऐसे निकलेंगे जिन्हें जीवन का मूलमन्त्र कह सकते हैं। कुछ उदाहरण देखिए :

'हमें अपनी छुट्टियों के लिये कोई खास कार्यक्रम नहीं बनाना चाहिये। छुट्टियों के दिन बिल्कुल नष्ट ही करने चाहियें, जब तक कि स्वयं आलस्य ही हमारे लिये भार स्वरूप न हो उठे।'

'जो कुछ मृत हो चुका है, उस से अपनी आत्मा का भोजन नहीं बनाना चाहिये, क्योंकि जो मृत है वह मारक है—मृत्यु को लाने वाला है। मृत्योर्मा अमृतं गमय'''तब तक स्वच्छ प्रकाश के राज्य में प्रवेश नहीं कर सकते जब तक कि हम ने अपना तमाम ऋण न चुका दिया हो और मरे हुए भूतकाल में हमारे जो बन्धन हैं, वे न टूट गये हों। अपने पुराने व्यक्तित्व से विदाई लेना अत्यन्त ही कठिन है। जब तक विदाई का क्षण नहीं आता तब तक इस बात का हमें पता नहीं लगता कि हमारे पुराने व्यक्तित्व ने अपनी जड़ें कितनी दूर तक जमा ली थीं और जीवन के रस को चूसने के लिए उस के प्यासे नस्से कितनी गहराई तक चले गये थे। हमारे जीवन की अवधि थोड़ी है और सेवा के अवसर कम ही मिलते हैं, इस लिये हमें अपने विचारों के बीज उन आत्माओं में बोने चाहियें जो उस की अधिकारी हैं और जहां वे बीज फसल के रूप में उग सकेंगे।

एक अन्य पत्र के उद्धरण लीजिए :

'जब बसन्त ऋतु जाने वाली होती है तो मानों मैं अपनी घोर निद्रा से जग कर सोचता हूँ, यह निद्रा जिस में मुझे दुनियां को सन्देश भेजने पड़ते हैं कि मैं तो फालतू लोगों के समूह का हूँ और तब मैं जल्दी से उन आवारा प्राणियों के साथ गाने लगता हूँ। उसी वक्त कोई कान में कहता है इस आदमी ने तो समुद्र यात्रा की है। और तभी मेरा गला रुंध जाता है।'

'क्या यह बात दुनियां के लिये कल्याणकारी नहीं है, कि कवि लोग उन प्रस्तावों को बिल्कुल भूल जायें जो बड़ी-बड़ी सभाओं में पास किये जाते हैं।' अपनी माता की मृत्यु के बाद जब दीनबन्धु ऐण्ड्रूज अफ्रीका से लौट रहे थे, गुरुदेव ने उन्हें लिखा था—

'हम लोग आप की प्रतीक्षा कर रहे हैं, क्यों कि हम जानते हैं कि आप अपने हृदय में उस बुद्धि को ला रहे हैं, जो मृत्यु ने आप को प्रदान की है। और उस कोमल शक्ति को भी, जो दुःख से आप को मिली है।'

'सत्य से मुक्ति होती है स्वाधीनता मिलती है, केवल यही बात ठीक नहीं है। उस के साथ-साथ यह भी ठीक है कि स्वाधीनता हमें सत्य प्रदान करती है। इसीलिये बुद्ध भगवान ने अहं के बन्धनों से मुक्ति को महत्व दिया था, क्योंकि तब सत्य स्वयं ही आ जाता है।'

गुरुदेव को तरह-तरह के आदमियों से मिलना होता था और विभिन्न प्रकृति के मनुष्यों का आतिथ्य करना पड़ता था और इस से उन का जीवन अत्यन्त व्यस्त हो जाता था। एक पत्र में उन्होंने मि० ऐण्ड्रूज को लिखा था—

'क्या मैं कवि नहीं हूं ? कोई दूसरा व्यक्ति बनने से मुझे क्या मतलब ? लेकिन दुर्भाग्य यह है कि मैं एक सराय की तरह बन गया हूँ, जिस में अजीब-अजीब तरह के आदमी घुस बैठे हैं। लेकिन अब वक्त आ पहुंचा है, जब कि मैं इस

मटियारगोरी को छोड़ दूं यह कोई बहुत मुनाफे की चीज नहीं है।

सन् १९२१ में गुरुदेव इङ्गलैंड गये थे और वहां से उन्होंने मि० एण्ड्रूज को लिखा था—

'इङ्गलैंड पहुँच कर मुझे हर्ष हुआ। यहां पर सब से पहले जिन लोगों से मुलाकात हुई उन में एच. डबल्यू नेलिसन का नाम उल्लेख योग्य है। जिस देश ने नेलिसन जैसा आदमी पैदा किया उस देश की आत्मा सचमुच जीवित है। किसी भी देश के विषय में निर्णय करते समय हमें उस के सर्वोत्तम मनुष्यों को ध्यान में रखना चाहिये और मुझे यह कहने में कोई भी संकोच नहीं कि अंग्रेजों में जो सर्वश्रेष्ठ हैं वे संसार की सर्वोच्च मनुष्यता के नमूने हैं।

जब ५ अप्रैल सन् १९४० को दीनबन्धु एण्ड्रूज का स्वर्गवास हो गया तो उस के पांच दिन बाद उन्होंने रोमा रोलां को लिखा था—

'पिछले दिनों में चार्ली एण्ड्रूज की मृत्यु से हमारे यहां दुःख की घटा छा गई है। वे मेरे प्रिय मित्र थे, उन से मेरा बहुत निकट का सम्पर्क था और वे मेरे साथी काम करने वाले थे। कलकत्ते के अस्पताल में दो महीने की बीमारी के बाद वे स्वर्गवासी हुए. उनकी मैत्री तथा उदारता का दान अखण्ड था। और उस के चले जाने से जो स्थान रिक्त हुआ है, उस का अनुमान करना कठिन है। हम लोगों की तो अकथनीय हानि हुई है। उनके जीवन से निरन्तर स्फूर्ति मिलती थी, वे एक प्रिय मित्र से भी अधिक थे। आशा है कि आप को मेरे दुःख में सहानुभूति होगी।

शान्ति निकेतन के वियोग से गुरुदेव बराबर दुखित रहते थे। चाहे कहीं भी हों, उन्हें शान्ति निकेतन की याद बराबर सताती थी। श्री फणि भूषण अधिकारी की कन्या श्री भक्ति देवी को उन्होंने अमरीका से लिखा था—

भक्ति, तुम हमारे आश्रम में आ गई हो, इस से मुझे बड़ी खुशी हुई है। इस समय मैं बहुत दूर हूँ, कुछ भी अच्छा नहीं लगता। वर्षा का समारोह वन-वन में, आकाश-आकाश में जम रहा था। कदम्ब वन, नूतन प्रफुल्लता से भर गया था, लेकिन मैं नवीन गीतों की डाली ले कर उपस्थित नहीं हुआ। शारदोत्सव के समय यहां आ गया। शेफालिका वृक्ष के नीचे सौंदर्य का सदाव्रत चल रहा होगा और आकाश में शुभ्र बादल धीरे-धीरे चल रहे होंगे। हवा में शीतलता का आभास होगा और तालवृक्षों के शिखर पर आलोक का स्पर्शमणि। शारदा देवी से संगीत की पेशगी लेकर भी मैं संगीत सभा में नहीं पहुँच पाया। साल भर के उत्सवों से गैर-हाजिर हो गया। यदि दूसरों की नौकरी होती तो उसे नौकरी को एटलांटिक महासागर में डुबो कर चला जाता लेकिन अपने काम से तो छुट्टी नहीं मिलती। फिर भी दिन पर दिन गुजर रहे हैं और निकट आ रहा है मुक्ति का दिन। आखिर एक दिन रंगीन रास्ते से शालकुञ्ज में पहुंचूंगा।

गुरुदेव ने अपनी पुत्र वधू को जो पत्र लिखे थे वे घरेलू टाइप के है। उन में साहित्यिक छटा कम है, मतलब की बातें अधिक हैं। अपनी पुत्र वधू की शिक्षा को लेकर उन की सुख सुविधा के बारे में और उन के स्वास्थ्य इत्यादि के विषय में गुरुदेव बराबर चिन्तित रहते थे—

'तुम्हारे पढ़ने में जो बाधा पहुँची है, उस से मेरा मन उद्विग्न है। तुम्हें पढ़ाने के लिये जैसा अजित को कह आया था क्या उसी तरह तुम्हारी पढ़ाई चल रही है। अंग्रेजी पाठ प्रथम भाग समाप्त हो गया। तुम्हारे लिये एक किताब और भी ठीक कर दी थी क्या तुम उस को ठीक तौर पर समझ लेती हो? वह किताब

अंग्रेजी पाठ के मुकाबिले में भारी नहीं हलकी है।'

आगे चल कर गुरुदेव की चिट्ठियों ने भारी गम्भीरता प्राप्त कर ली थी। उन्होंने अपनी एक चिट्ठी में प्रतिमा देवी को मृत्यु के विषय में लिखा था—

'मां, जीवन को मृत्यु के साथ मिला कर न देखने से सत्य का दर्शन नहीं हो सकता। हम लोग जब प्रतिदिन जीवन की उपलब्धि करते हैं, तब मृत्यु को रस का अंग समझ कर उपलब्धि नहीं करते, और इसी कारण हम अपनी प्रवृत्ति द्वारा संसार को जकड़ लेते हैं। हमारी वासना हमारा भयानक बन्धन बन जाती है। मृत्यु के साथ जीवन को ऐक्य भाव से देखने पर ही संसार का भार हल्का हो जाता है। इत्यादि।'

गुरुदेव के जो पत्र हमारे पास सुरक्षित हैं उनका सारांश ही दिया जा सकता है। गुरुदेव का सब से प्रथम पत्र जो मेरे पास मौजूद है वह सन् १६१५ का है और उस में 'फिजी द्वीप में मेरे २१ वर्ष' नामक पुस्तक की प्राप्ति स्वीकार की गई है। वह अंग्रेजी में है। बंगला भाषा के जो दो पत्रक हैं उस में एक का महत्व मेरे लिये इस कारण है कि उस में उन्होंने मुझे यह अनुमति प्रदान की थी कि मैं उन के किसी भी पत्रिका में प्रकाशित किसी भी लेख का अनुवाद कर के छपवा सकता हूँ।

आभार से कोनो लेख से कोनो पत्रिका इहति-प्रइन करिते पारयो, एइ अधिकार अपना के दितेछि कोनो पत्रिकार काछे ऋण स्वीकार करिवार प्रयाजन नाइ।

गुरुदेव ने अपने अंग्रेजी पत्र में १५ सितंबर सन् १६२२ को मुझे लिखा था—

'अपने आश्रम को लौटने के बाद जो बोझ मेरे कन्धों पर आ पड़ा है, उस की कल्पना करना तुम्हारे लिये कठिन होगा। विश्वभारती मेरे जाग्रत घण्टों का प्रत्येक क्षण ले लेती है और रात को जो सोने के घंटे होते हैं, उस का भी कुछ हिस्सा।'

अपने अत्यन्त व्यस्त जीवन में गुरुदेव को हजारों ही पत्र लिखने पड़ते थे। वे संसार भर में फैले पड़े हैं। यदि उनका संग्रह हो जाय और उनका अनुवाद भी हमारी मातृभाषा हिन्दी में हो तो हमारे साहित्य का बड़ा उपकार होगा।

—

शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व

डा० राजेन्द्र प्रसाद

यह अक्षरशः सत्य है कि मानव समाज आज दोराहे पर है। हमें यह फैसला करना होगा कि वैज्ञानिक उन्नति को मानव के लिए वरदान बना हमें एक साथ मिलजुल कर रहना है अथवा अपने दृष्टिकोण को संकुचित कर निजी अस्तित्व के लिए विध्वंसक शास्त्रास्त्रों पर निर्भर रहना है। शस्त्रास्त्र पर निर्भर रहने का अर्थ पारस्परिक संघर्ष ही हो सकता है, और दुर्भाग्य से इस प्रकार के कई संघर्ष हम अपने जीवन में देख चुके हैं। इस मार्ग पर चलने का अर्थ विनाश, और सम्भवतः मानव समाज का अन्त, ही हो सकता है। भगवान बुद्ध द्वारा दिखाए हुए शांति-सह-अस्तित्व के मार्ग पर चलकर ही हम विनाश-कारी युद्ध और उस से होने वाली व्यापक हानि से बच सकते हैं।

—

गुरुकुल शिक्षा प्रणाली और उसका आधुनिक काल में प्रयोग

डॉ० विश्वम्भर शरण एम ए, पी एच डी

तिरंगे के सम्मान के लिये रक्त बहाना, संविधान के अर्थ देश की वेदी पर बलिदान हो जाना, देश की रक्षा के लिये न्योछावर होना, ये सब सौभाग्य के लक्षण हैं। परन्तु ये सब गुण एक दिन में नहीं प्राप्त होते। अच्छी अच्छी आदतें शनै शनै अभ्यास से प्राप्त होती हैं। वास्तव में इनका सूत्रपात माता के गर्भ में ही होता है और इस की पूर्ति गुरु के चरणों में अनेक साधनों और सस्कारों द्वारा होती है।

किसी सभ्यता का पुराना होना उस के व्यर्थ होने को सूचित नहीं करता, अपितु उस की उपयोगिता और स्थिरता का प्रमाण है पाश्चात्य सभ्यता का यह डंका कि वह लौकिक रोगों को दूर करने की एक अचूक औषधि है ढोल की पोल निकला है। इस समय दुनिया की नब्ज टटोलने से ऐसा प्रतीत होता है कि वह ऐसी वस्तुओं की खोज में है जो अनेक युगों के धक्के को सह कर भी अभी तक जीवित हैं। ऐसी स्थिति होते हुए भी हमें खेद है, हमारे भारतवर्ष में शिक्षित समाज के दिमाग में यह बात बस गई है कि उस की पुरानी संस्थायें सब व्यर्थ हैं, और समाज, राजनीतिक तथा शिक्षा की सक्रिय उन्नति विदेशी साधनों ही द्वारा हो सकती है। यह केवल शताब्दियों की गुलामी की मनोवृत्ति है। बाहर की वस्तुओं से सबक लेना बुरा नहीं परन्तु गुलामों की तरह उन को अपनाना एक स्वतन्त्र देश को अब शोभा नहीं देता।

इस थीसिस में इस गुलामी के भावों को दूर करने का प्रयत्न किया गया है और बताया गया है कि हमारे देश में शिक्षा के क्षेत्र में भी रत्न छिपे हुए हैं और बाहर की चीजों को स्वीकार करते हुए भी इस बीसवीं सदी में हम अपनी प्रचीन शिक्षा प्रणाली का सफलतापूर्वक राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में आदर पूर्वक प्रयोग कर सकते हैं।

शिक्षा के लक्ष्य को ही अगर हम इस समय विचारें तो हमें प्रतीत होगा कि गुरुकुल प्रणाली का लक्ष्य मनुष्यों को आदमी से देवता बनाना था। देवता का अर्थ उस मिट्टी की मूर्ति से नहीं है जो आक्रमणों और अनादरों का भली भाँति उत्तर न दे सके। बल्कि उस शक्ति से है जो आत्मिक गौरव रखते हुए संसार के कामों में निर्लिप्त हो कर भाग ले सके। क्या ऐसा व्यक्ति आचरण शून्य होगा? क्या ऐसा शख्स रोटी न कमा सकेगा? क्या ऐसा मनुष्य विद्या अथवा पुरुषार्थ विहीन रहेगा? क्या ऐसा जीव नागरिक बन कर गण राज्य में शासन न कर सकेगा और ग्लेडस्टन, चर्चिल, जार्ज वाशिंगटन और लिंकन की भांति देश का मुख उज्जवल न कर सकेगा? साराश जितने भी उद्देश्य शिक्षा के विशेषज्ञों ने बताये हैं इस गुरुकुल प्रणाली के लक्ष्य के अन्दर स्थान रखते हैं।

> 'सोई सर्वज्ञ गुणी सोइ दाता,
> सोइ महि मंडन पण्डित ज्ञाता।'
>
> —तुलसीदास

यह बात माननी पड़ेगी कि पाठ्यक्रम साधन प्रबन्ध और अनुशासन भी लक्ष्य के ही अनुरूप होते हैं इस लिये गुरुकुल प्रणाली के भी साधन इत्यादि लक्ष्य की पूर्ति के ही अनुकूल थे। उद्देश्य संसार से भागना नहीं था, बल्कि पूर्ण शक्तिशाली बन कर संसारी जीव के ऋण उतारना था।

> अनाश्रित कर्मफलं कार्यं कर्म करोति य
> स सन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रिय
>
> —गीता

अब सवाल यह पैदा होता है कि क्या आधुनिक काल में गुरुकुल प्रणाली सम्भव है? अगर यह सोचें कि आज कल लड़के प्राचीन ढंग से जंगल में रहें, नंगे पैर चलें, मामूली कपड़ा पहने या न पहने इत्यादि तो यह बाहरी भेष चलना कठिन है, असम्भव है, परन्तु गुरुकुल के असूलों पर यदि काम हो तो यह प्रणाली आज कल भी सहज में चल सकती है।

गुरुकुल प्रणाली की विशेषता है, गुरु के समीप २४ घंटे रहना, खुले हवादार, शहर से दूर, शान्त वातावरण में रहना, गुरु अथवा गुरुकुल की सेवा करना सादा जीवन उच्च विचार रखना भारतीय सदाचार का पालन करना, अपने शरीर मस्तिष्क और आत्मा को बलिष्ट व पुष्ट करना, स्वाध्याय करना ब्रह्मचर्य व्रत धारण करना और जब विद्योपार्जन करें गुरु की आज्ञा में चलना इत्यादि-इत्यादि। यह सब बातें आसानी से आज कल भी हो सकती हैं। चाहे हम पक्के मकानों में रहें, चाहे झोपड़ियों में पढ़ें। चाहे अंग्रेजी पढ़ें, चाहे संस्कृत, चाहे हिन्दी या उर्दू पढ़ें। कठिनाई एक बात की है कि हमें अपनी पुरानी बातों में, सिद्धान्तों में, विश्वास नहीं रहा। जब तक किसी विदेशी विद्वान की छाप लग कर कोई सिद्धान्त नहीं आता, हम लोग उसे स्वीकार नहीं करते।

विद्योपार्जन में धैर्य चाहिये, यह काम जल्दी का नहीं है। यह दो तीन महीने का काम नहीं है जैसा आज कल विद्यार्थी परीक्षा के निकट करते हैं। डिग्री लेना और शिक्षित होना वास्तव में दो बातें हैं। साक्षरता और शिक्षा में भी अन्तर है, एक आदमी अक्षर न जानता हो, मगर शिक्षित हो सकता है, जैसे शिवा जी व अकबर। एक व्यक्ति बी० ए० पास मगर असभ्य साक्षर हो सकता है परन्तु शिक्षित नहीं। गुरु की अवज्ञा में रह कर ही आदमी विद्वान् और शिक्षित बन सकता है वरन् नहीं। गोखले श्री राणाडे की आज्ञा में पढ़े। श्री स्वामी दयानन्द ने अपने गुरु स्वामी विरजानन्द जी की सेवा में अध्ययन किया।

आजकल स्थान-स्थान पर अनुशासन की कमी प्रतीत होती है। हड़ताल के नमूने देखने में आते हैं। शिक्षा संस्थाओं में पढ़ना कठिन हो जाता है. विद्यार्थी का आचरण हृदय विदीर्ण करने वाला है। इसका कारण एक है–विद्यार्थीयों को ठीक देखभाल करने वाला कोई नहीं, माता-पिता को समय नहीं, स्कूल में अध्यापक केवल परीक्षा पर जोर देते हैं, मगर जैसे बाग बगैर माली के, और जानवर बगैर चरवाहे के खराब हो जाते हैं वैसे ही बगैर २४ घंटे की देख-रेख के चंचल स्वभाव वाले बालक भी पथभ्रष्ट हो जाते हैं।

इसलिये आजकल की बुराइयों को दूर करने का उपाय केवल एक है कि विद्या का उद्देश्य आध्यात्मिक हो और विद्या गुरु के समीप नियमानुसार व्रत ग्रहण कर के ऋषि शैली के अनुसार हो, और गुरु लोग बालकों के चरित्र का निर्माण करना अपना प्रथम कर्तव्य समझें और समाज भी इस कार्य की पूर्ति में उन्हें पूरा सहयोग दे और आदर प्रदान करे।

ओ३म् सहनाववतु सहनौभुनक्तु
सहवीर्यं करवावहै।
तेजस्विना वधी तमस्तु
माविद्विषावहै। ओ३म्

—कठोपनिषत्

★

ऋतुएं क्यों होती हैं ?

पृथ्वी पर ऋतु सम्बन्धी परिवर्तन क्यों होते रहते हैं ? सर्दी और गर्मी, वर्षा और सूखा, तथा तूफान और साफ मौसम के रूप में निरन्तर होते रहने वाले परिवर्तनों का मूल कारण क्या है ?

वैज्ञानिकों को इस प्रश्न का आंशिक कारण तो पता है, किन्तु वे यह बात निःसंकोच रूप से स्वीकार करते हैं कि मौसम में परिवर्तन लाने वाले बहुत से मूल कारणों के सम्बन्ध में अभी तक कोरी कल्पना से ही काम लिया जाता है। १९५७—५८ में संसार में मनाये जाने वाले भू-भौतिक वर्ष में ४० से अधिक देशों के वैज्ञानिकों का एक प्रमुख लक्ष्य यह होगा कि पृथ्वी के आसपास के वायु मण्डल के सम्बन्ध में नई जानकारी हासिल की जाये। उनका विश्वास है कि ऋतु परिवर्तन करने वाली शक्तियां इस विस्तृत एवं अज्ञात वायुमण्डल में मौजूद हैं।

जब मौसम में अचानक कोई ऐसी बात हो जाती है जिसके सम्बन्ध में पहले भविष्यवाणी न की गई हो तब लोग उसे ऋतु के सम्बन्ध में सूचना देने वाले कर्मचारी की गल्ती बता देते हैं। ऋतु सम्बन्धी भविष्यवाणी में होने वाली अधिकांश गलतियां मनुष्य की भूल-चूक का परिणाम नहीं होतीं। वैज्ञानिकों का कथन है कि उन गल्तियों का कारण अक्सर यह होता है कि हमें उन शक्तियों के विषय में बहुत कम ज्ञान है जो ऋतु में परिवर्तन लाती रहती हैं।

वायुमण्डल की पड़ताल

सभी स्थानों के मौसम सम्बन्धी सूचनाएं देने वाले कर्मचारियों की एक सबसे बड़ी आवश्यकता भूमि के आसपास के वायुमण्डल के सम्बन्ध में अधिक जानकारी प्राप्त करने की है। यह वायुमण्डल वायु का एक विस्तृत 'परदा' है जो भूमि के चारों ओर ५०० से ६०० मील दूर तक फैला हुआ है।

वायुमण्डल में क्या हो रहा है, यह मालूम करने के यत्न में संलग्न ऋतु अनुसन्धान कर्मचारी की स्थिति उस मछली के समान है जो समुद्र की गहराई में यह अनुमान लगाने का प्रयत्न कर रही हो कि समुद्र की सतह पर क्या हो रहा है। वास्तव में आज ऋतु के सम्बन्ध में सभी बातें पृथ्वी की सतह पर ही मालूम की जाती हैं। वायुमण्डल तथा ऋतु परिवर्तनों के कारणों के सम्बन्ध में अधिक जानकारी हासिल करने के लिए इस बात की अत्यावश्यक है कि ऐसे गुब्बारों का बहुत प्रयोग किया जावे जिनमें वायुमण्डल में होने वाली घटनाओं का रेकार्ड करने वाले यन्त्र लगे हों।

गुब्बारों का उपयोग

अन्तरिक्ष-अनुसन्धान के लिए ऐसे गुब्बारे बनाये जाते हैं जो अपने साथ ऐसे यन्त्रों को ऊपर ले जा सकते हैं जिनके द्वारा वायुमण्डल के दबाव, तापमान, आर्द्रता, वायु की गति तथा वायुमण्डल के ऊपरी भाग में चलने वाली वायु धाराओं की गति का रेकार्ड हो जाता है। अधिकांश गुब्बारों में कैमरे लगे होते हैं जो भूमि के ऊपर उड़ने वाले गुब्बारों के साथ-साथ अपनी स्थिति बदलते रहते हैं। कुछ गुब्बारों में रेडियो ट्रांसमिटर लगे रहते हैं। जो भूमि के केन्द्रों को उन बातों के सम्बन्ध में संकेत भेजते हैं जो यन्त्रों द्वारा 'देखी' अथवा 'अनुभव' की जाती हैं।

अमेरिकी ऋतु-विभाग के एक अधिकारी ने हाल में बताया है कि पश्चिम के प्रायः सभी देशों द्वारा मौसमी अनुसन्धान करने के गुब्बारों का प्रयोग किया जाता है। उस ने बताया कि

अमेरिका को यूरोप के सभी प्रमुख देशों से, जिन में रूस तथा उस के कठपुतली देश भी सम्मिलित हैं, गुब्बारों द्वारा हासिल किये गये ऋतु-समाचार प्राप्त होते हैं।

रूस द्वारा १९४५ से गुब्बारों का प्रयोग

अमेरिकी अधिकारी ने बताया कि रूस में १९४५ से ऋतु सम्बन्धी अनुसन्धान के लिए बड़े पैमाने पर गुब्बारे उड़ाने की व्यवस्था है और उस ने गुब्बारों में लगे रेडियो ट्रान्समिटरों द्वारा प्राप्त सूचनाएं अंकित करने वाले केन्द्रों की संख्या में काफी वृद्धि कर ली है। रूस तथा अन्य देशों द्वारा जो गुब्बारे प्रयोग में लाये जाते हैं वे बिल्कुल वैसे ही हैं जैसे कि अमेरिका द्वारा प्रयोग में लाये जाते हैं।

उक्त ऋतु-अधिकारी ने बताया कि सभी देश गुब्बारों द्वारा एकत्र किये गये समाचारों का मुक्त रूप से आदान प्रदान करते हैं। उदाहरण के तौर पर, रूस अमेरिका को समाचार देता है और अमेरिका बदले में वैसे ही समाचार रूस तथा अन्य देशों को देता है।

वैज्ञानिकों ने स्वीकार किया है कि फिर भी, वायुमंडल के सम्बन्ध में आवश्यक बातें जानने के लिए अभी तक गुब्बारों का पर्याप्त मात्रा में प्रयोग नहीं होता है।

अन्तर्राष्ट्रीय भू भौतिक वर्ष में वायुमंडल का अनुसन्धान करने के लिए गुब्बारों का विस्तृत प्रयोग किया जायेगा। १९५७ तथा १९५८ में वायुमंडल के स्वरूप तथा गति आदि के सम्बन्ध में नई जानकारी हासिल करने के लिए बहुत बड़ी संख्या में और संसार में सर्वत्र ऋतु सबन्धी गुब्बारे उड़ाये जायेंगे। इस से ऋतु अनुसन्धान के क्षेत्र में विशेष लाभ होने की सम्भावना है।

★

पुराने नक्षत्र नये नक्षत्रों का पोषण करते हैं

जो नए नक्षत्र पैदा हो रहे हैं वे उस सामग्री से पोषण पाते हैं जो पुराने नक्षत्र उगलते रहते हैं। यह सूचना अमेरिका की राष्ट्रीय वैज्ञानिक अकादमी ने प्रदान की है। पुराने और नए नक्षत्रों में तत्वों के बाहुल्य में जो अन्तर पाया गया है, उस का कारण भी पोषण का निरन्तर घूमने वाला यह चक्र बताया गया है।

माउण्ट विलसन और पैलोमर वेधशालाओं के डा० जैस्सी एल० ग्रीनस्टीन ने अपनी रिपोर्ट में बताया है कि पृथ्वी और सूर्य तत्वों के विकास की दृष्टि से अपेक्षाकृत पिछड़ी हुई दशा में हैं। नक्षत्रों से निकलने वाली गैसों के फलस्वरूप नए-नए नक्षत्र निरन्तर निर्मित हो रहे हैं। खगोलशास्त्री इस सिद्धान्त में अब साधारणतया विश्वास करने लगे हैं। डा० ग्रीनस्टीन ने बताया कि हाल में जो पर्यवेक्षण हुए हैं, उन से स्पष्ट है कि बहुत से पुराने नक्षत्र अनन्त आकाश में अपनी बहुत सी सामग्री सदैव खोते रहते हैं। इस खोई हुई सामग्री से नए नक्षत्रों का अन्ततागत्वा निर्माण होता है।

●

साहित्य-परिचय

समालोचना के लिए प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियां आनी आवश्यक हैं—सम्पादक।

शिवानन्द दृष्टान्त मंजरी

लेखक–श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती। प्रकाशक–योग वेदान्त आरण्य विश्वविद्यालय, ऋषिकेश। आकार २०×३०/८, पृष्ठ संख्या १८०, मूल्य २।

स्वामी शिवानन्द जी ने इस पुस्तक में जीवन के गहन तत्वों को छोटी-छोटी रस प्रद कहानियों के द्वारा सरलता से समझाया है। अज्ञान के अन्धकार से आवृत जनों को ये दृष्टांत कर्तव्य पथ की ओर अग्रसर होने में सहायता करते हैं।

शिवानन्द सुयश

लेखक–श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती। २०×३०/१६ आकार के २८ पृष्ठ। प्रकाशक–शिवानन्द आश्रम, ऋषिकेश।

स्वामी शिवानन्द जी की यह संक्षिप्त जीवनी है जिस में उन के प्रारम्भिक काल के जीवन के वर्णन के साथ-साथ उनकी वर्तमान प्रवृत्तियों का भी उल्लेख है।

जप योग

लेखक–श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती। प्रकाशक, शिवानन्द आश्रम ऋषिकेश। २०×३०/१६ आकार के ११८ पृष्ठ, मूल्य २)।
स्वामी जी की मूल अंग्रेजी पुस्तक का यह हिन्दी रूपांतर सुश्री कान्ती कपूर ने प्रस्तुत किया है। इस पुस्तक में जप की महिमा का प्रतिपादन किया गया है। —रामेश बेदी।

वेद का राष्ट्रिय गीत

आलोच्य ग्रंथ गुरुकुल स्वाध्याय मंजरी का २४ वां पुष्प है। इस में अथर्ववेद, काण्ड १२, सूक्त १ की, जिसे भूमि-सूक्त या पृथ्वी-सूक्त भी कहते हैं और जिस में कुल ६३ मन्त्र हैं, शब्दार्थ सहित विस्तृत व्याख्या की गई है। भाषा सरल, सुबोध और सरस है। भूमि-सूक्त वैदिक भारत के भावुक हृदय की अपनी मातृभूमि के जन-पशु, नदी-निर्झर, गिरी गह्वर वन-पर्वतों के प्रति काव्यमयी अभिव्यक्ति है। प्रत्येक मन्त्र से मातृभूमि भक्ति की धारा फूट पड़ती है। इसे राष्ट्रीय गीत कहा जा सकता है। सूक्त की विशेषता है उस की सार्वभौमिकता। इस में विश्व-राष्ट्र गीत बनने के पर्याप्त गुण हैं।

अब तक भूमि-सूक्त के हिन्दी में कई गद्य पद्यमय अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं। प्रस्तुत व्याख्या की विशेषता है उस की पाद-टिप्पणियां, जो जिज्ञासुओं के लिए उपयोगी सिद्ध होंगी। विद्वान् व्याख्याकार ने प्रत्येक मन्त्र का भावबोधक शीर्षक भी दे दिया है, जिस से सामान्य पाठक को भावबोधन में सुविधा होगी। पुस्तक में ६४ पृष्ठों की लम्बी भूमिका दी गई है, जो प्रतिपाद्य विषय के अनुपात से अधिक स्थान घेरती है। यद्यपि इस में वेदविषयक प्राच्य पाश्चात्य विचारकों के अभिमत और उन की समीक्षा दी गई है, जिस में वेद-विषयक अनेक ज्ञातव्य बातों का समावेश हो गया है, तथापि ग्रन्थ के विवेच्य विषय से उन का विशेष सम्बंध नहीं।

अच्छा होता, यदि लेखक वैदिक गान पद्धति के शास्त्रीय विवेचन के साथ इस राष्ट्रगीत की गायन विधि पर भी प्रकाश डालते।

ग्रन्थ की छपाई सफाई उच्च कोटि की है। ग्रंथ वैदिक स्वाध्याय प्रेमियों के लिये बहुत उपयोगी है। —अवन्तिका।

गुरुकुल समाचार

ऋतु-रंग

जुलाई मास प्रारम्भ होते ही इस प्रदेश पर मेघराजा की कृपा प्रारम्भ हो गई है। प्राथमिक वर्षा ने ही धरती को आप्लावित कर दिया है। वन उपवनों और मैदानों में आनन्द और उल्लास छा गया है। खेतियाँ हरी-भरी हो उठी हैं। इन दिनों गंगा की नीलधारा खूब उफन उठी है। पावस का अवतरण होते ही पशु पंछी भी प्रमुदित हो उठे हैं। प्रभात होते ही चहुँ ओर पपीहे तथा अन्य वन पंछी चहकना प्रारम्भ कर देते हैं। अभी तक मच्छरों का उपद्रव प्रारम्भ नहीं हुआ है। कुलवासियों का स्वास्थ्य सामान्यतया ठीक है।

नवीन सत्र

ग्रीष्मकालीन दीर्घावकाश के पश्चात् ६ जुलाई से विश्वविद्यालय के पढ़ाई के समस्त विभाग खुल गए हैं, और नियमित पढ़ाईयाँ प्रारम्भ हो गई हैं।

मान्य अतिथि

१ मद्रास विश्वविद्यालय के दर्शन विभाग के अध्यक्ष श्री डाक्टर महादेवन सपरिवार तथा अपने शिष्यों सहित कुल में पधारे। आपने परिक्रमा कर के सभी विभागों का अवलोकन किया। अपनी लिखित सम्मति में गुरुकुल की प्रगति पर परितोष प्रकट किया। आप सन् १९३१ में भी गुरुकुल में पधारे थे।

२ बंकाक (थाईलैंड) के भिक्षु श्री थाटाधामा (पालि पंडित)थाई दूतावास द्वारा गुरुकुल में प्रेषित किए गए हैं। आप गुरुकुल में रह कर संस्कृत और हिन्दी का अध्ययन करेंगे और गुरुकुल के छात्रों को पाली पढ़ायेंगे।

आयुर्वेद कमीशन

२१ जून को आयुर्वेद कमीशन (दवे समिति) के सदस्य श्री दयाशंकर दवे (आरोग्य मंत्री—सौराष्ट्र), श्री शांतिलाल शाह (आरोग्य मंत्री—बम्बई राज्य), डाक्टर प्राणजीवन मेहता, श्री वासुदेवभाई त्रिवेदी तथा श्री कुलकर्णी जी (उत्तरप्रदेश आयुर्वेद विभाग के उपसंचालक) आदि सज्जन गुरुकुल में पधारे। आप लोगों ने आयुर्वेद कॉलेज, शल्यक्रिया भवन, निदान प्रयोगशाला, चिकित्सालय, पच-कर्म-भवन, प्रकृतिविद्या संग्रहालय, आयुर्वेदीय औषधि संग्रह, ग्रंथालय, पुरातत्व संग्रहालय आदि विभागों का निरीक्षण किया कुलपति श्री इन्द्र जी विद्यावाचस्पति ने सब सदस्यों का श्रद्धानन्द अतिथि भवन में कुल की ओर से स्वागत किया तथा गुरुकुल की कार्य शैली से सदस्यों को परिचित किया। आयुर्वेद कालेज के विभिन्न विभागों की स्वच्छता और सुव्यवस्था देख कर सदस्यगण बहुत प्रसन्न हुए। संग्रहालय, वनस्पति-संग्रह, औषध-संग्रह, आदि के वैज्ञानिक आयोजन की आप लोगों ने विशेष प्रशंसा की। अपराह्न में आयुर्वेद कालेज के उपाध्यायों से कमीशन के सदस्यों ने विस्तार से चर्चाएँ कर के उनकी साक्षियाँ अंकित कीं। रात को सदस्यों को गुरुकुल के कार्यों का चित्रपट प्रदर्शित किया गया।

पदवियों की मान्यता

पंजाब सरकार ने गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय (हरिद्वार) को अलंकार और विद्याधिकारी की उपाधियों को अपने राज्य की बी० ए० और मैट्रिक पदवी के समकक्ष स्वीकार कर लिया है। इस प्रकार गुरुकुल के स्नातकों को पंजाब राज्य की सामान्य नौकरियों के लिए सुविधाएं प्राप्त हो गई हैं।

★

गुरुकुल पत्रिका

[गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय की मासिक पत्रिका]

—०—

लेखकों तथा उनकी रचनाओं की सूची

पहले अकारादि क्रम से लेखक का नाम है। फिर लेख का शीर्षक और उस के आगे पृष्ठ संख्या है

*

लेखों की सूची

विषय के अनुसार अकारादि क्रम से

वैदिक स्वाध्याय

धर्म, आत्म दर्शन

चरित्र निर्माण

शिक्षा

कोष, भाषा, लिपि

इतिहास, पुरातत्व

विदेशों में भारतीय संस्कृति

कला

चिकित्सा

हमारे देश को समृद्धि

उद्योग

संस्मरण, श्रद्धांजलियां

कृषि, प्रकृति अध्ययन

साहित्य परिचय

गुरुकुल

विविध

★